Master of Arts (Sanskrit) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20SKT21C4

पद्य साहित्य

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr. Shri Bhagwan*

Copyright © 2003, 2020; Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

पाठ्यक्रम

पद्यसाहित्य

Paper Code: 20SKT21C4

Maximum Marks: 100

Term End Examination: 80

Assignment: 20

समय : 3 घण्टे

घटक – I	मेघदूतम् – कालिदास (पूर्वमेघ)	20
घटक – II	मेघदूतम् – कालिदास (उत्तरमेघ)	20
घटक – III	शिशुपालवधम् – माघ (प्रथम सर्ग)	20
घटक – IV	बुद्धचरितम् – अश्वघोष (तृतीय सर्ग)	20

दिशानिर्देश

नोट : 16–16 अंक के कुल पांच प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से प्रथम प्रश्न वस्तुनिष्ठ होगा जिसके अन्तर्गत विकल्प रहित आठ वस्तुनिष्ठ प्रश्न (प्रत्येक घटक में से दो) पूछे जायेंगे जिनका उत्तर संस्कृत भाषा में देना अनिवार्य होगा। 16

शेष चार प्रश्नों के घटकानुसार निर्देश अधोलिखित हैं –

घटक – I	(क)	4 में से 2 श्लोकों की व्याख्या	2 × 5 =	10
	(ख)	दो में से एक समीक्षात्मक प्रश्न	1 × 6 =	06
घटक – II	(क)	4 में से 2 श्लोकों की व्याख्या	2 × 5 =	10
	(ख)	दो में से एक समीक्षात्मक प्रश्न	1 × 6 =	06
घटक – III	(क)	4 में से 2 श्लोकों की व्याख्या	2 × 5 =	10
	(क)	2 में से 1 प्रश्न	1 × 6 =	06

घटक – IV	(क)	4 में से 2 श्लोकों की व्याख्या	2 × 5 =	10
	(ख)	2 में से 1 प्रश्न	6 × 6 =	06

अनुशंसित ग्रन्थ –

1. मेघदूत, व्याख्याकार – एम० आर० काले, मोतीलाल बनारसीदास
2. मेघदूत, व्याख्याकार – एस० के० डे०, साहित्य अकादमी, दिल्ली
3. शिशुपालवधम्, व्याख्याकार – डॉ० आद्या प्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद
4. बुद्धचरित, व्याख्याकार – श्री रामचन्द्र शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

पाठ्यक्रम 3–4

विषय सूची 5–6

इकाई – 1 : मेघदूतम् – कालिदास (पूर्वमेघ) 7–35

1.1 परिचय

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 मेघदूतम् (पूर्वमेघ)

1.4 अपनी प्रगति जांचिए

1.5 सारांश

1.6 मुख्य शब्दावली

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई – 2 : मेघदूतम् – कालिदास (उत्तरमेघ) 36–56

2.1 परिचय

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 मेघदूतम् (उत्तरमेघ)

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

2.5 सारांश

2.6 मुख्य शब्दावली

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई – 3 : शिशुपालवधम् – माघ (प्रथम सर्ग) 57–76

3.1 परिचय

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 शिशुपालवधम् (प्रथम सर्ग)

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई – 4 : बुद्धचरितम् – अश्वघोष (तृतीय सर्ग) 77–90

4.1 परिचय

4.2 इकाई के उद्देश्य

4.3 बुद्धचरितम् (तृतीय सर्ग)

4.4 अपनी प्रगति जांचिए

4.5 सारांश

4.6 मुख्य शब्दावली

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई – 1

मेघदूतम् – कालिदास (पूर्वमेघ)

इकाई की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 मेघदूतम् (पूर्वमेघ)

1.4 अपनी प्रगति जांचिए

1.5 सारांश

1.6 मुख्य शब्दावली

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.1 परिचय

1.1.1 कालिदास का जीवन–वृत्त

संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में बहुधा जैसा प्राप्त होता है, मेघदूत आदि काव्यों के रचयिता महाकवि कालिदास के जीवन चरित्र के विषय में भी कोई निश्चित और प्रमाणित सामग्री उपलब्ध नहीं है। यह आश्चर्य ही की बात है कि हमें संस्कृत साहित्याकाश के सर्वोज्जवल नक्षत्र कालिदास जैसे कवि के विषय में कोई निश्चित जानकारी नहीं है। उनके जीवन, समय तथा अन्य व्यक्तिगत परिस्थितियों के सम्बन्ध में हमें केवल किंवदन्तियों तथा प्रत्यक्ष साक्षियों पर ही आश्रित रहना पड़ता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कालिदास ने अपनी किसी भी ग्रन्थ में अपने जीवन से सम्बद्ध किसी भी बात का उल्लेख नहीं किया है।

कालिदास के विषय में प्रचलित अनेक किंवदन्तियाँ

कालिदास के विषय में निश्चित सामग्री के अभाव के कारण अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो गई हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार वह बचपन में मूर्ख चरवाह था। एक विद्वान पण्डित ने उसका विवाह रूप तथा विद्या से गर्वित किसी राजकुमारी से करा दिया था। पत्नी द्वारा अपमानित होकर उसने माता काली की उपासना की और उसके वरदान से उसकी सरस्वती प्रसन्न हो गई। घर लौटने पर उसने पत्नी से कहा–**''अनावृतकपाटं द्वारं देहि।**'' इस पर पत्नी ने पूछा – **अस्ति कश्चिद् वागिविशेषः?** तब कालिदास ने वाग्देवी के प्रसाद को प्रकट करने के लिए पत्नी द्वारा कहे गये वाक्य के तीन शब्दों, 'अस्ति' 'कश्चित्' और 'वाग्' को लेकर क्रमशः कुमारसम्भव, मेघदूत और रघुवंश नामक तीन काव्यों की रचना की।

एक अन्य कथा के अनुसार कालिदास का सम्बन्ध लटा के राजा कुमारदास (लगभग 500 ई.) से बताया गया है। कहा जाता है कि कभी लटा के कवि राजा कुमारदास ने किसी वैश्या के भवन की दिवार पर कोई अपूर्ण

श्लोक लिख दिया और उस पद्य को पूर्ण करने वाले को स्वर्ण दान देने की घोषणा की। वैश्या के भवन में स्थित कालिदास ने वह श्लोक पूर्ण कर दिया, लेकिन धन की लोभी वैश्या ने धोखे से कालिदास की हत्या कर दी और स्वयं को उस श्लोक का पूर्ण करने वाला घोषित किया। लेकिन राजा ने उस वज्जना का पता लगा लिया, क्योंकि वह कालिदास की काव्य–कला से सुपरिचित था।

वह दूसरी किंवदन्ती के अनुसार कालिदास को अनेक उपाख्यानों के नायक राजा विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक कहा जाता है। इस किंवदन्ती का आधार सम्भवतः ज्यातिर्विदाभरण का निम्न श्लोक है –

धन्वन्तरिक्षणकामरसिंहशङ्कुवतालभट्टघटकर्पकालिदासाः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।।

लेकिन यह ध्यान रहे कि इस श्लोक में जिन अनेक पुरुषों का कथन किया गया है उन सबका समय एक नहीं है, इसलिए इस श्लोक में निहित परम्परा को सब अंशों में सत्य नहीं माना जा सकता है। भोजप्रब्रन्ध के लेखक बल्लालसेनसूरि ने कालिदास को परमार–वंशी धाराधीश भोज का आश्रित कवि कहा है। भोज का समय ईसा की 11वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जाता है। लेकिन भोजप्रबन्ध में निहित परम्परा पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता है, क्योंकि बल्लालसेन ने संस्कृत के प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों को भोज की राजसभा में उपस्थित दिखलाया है। सम्भवतः उसने 'नवसाहसाटाचरित' के लेखक पद्मगुप्त को, जिसे 'परिमल' या 'परिमल कालिदास' भी कहा जाता था, किसी भ्रान्ति के कारण कालिदास समझ लिया है।

जाति तथा निवास स्थान

कालिदास के विषय में किसी निश्चित जानकारी के अभाव में उसकी जाति तथा निवास–स्थान के विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। श्रौत–धर्म के प्रतिनिष्ठा होने के कारण उसे ब्राह्मण माना जाता सकता है। कालिदास के स्थान के विषय में पर्याप्त विवाद है। काश्मीर के विद्वान् उसे काश्मीरी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं और बंगाल के विद्वान् बंगाली। परम्परा के अनुसार कालिदास को उज्जयिनी के शासक विक्रमादित्य का आश्रित माना जाने के कारण कुछ विद्वान् उन्हें उज्जैन का निवासी बतलाते हैं। कालिदास ने मेघदूत में उज्जयिनी और उसके समीप में स्थित महाकाली के मन्दिर का उल्लेख बड़ी आस्था एवं श्रद्धा से किया है। यक्ष ने मेघ को अलकापुरी का मार्ग बतलाते हुए कहा है कि यद्यपि उज्जयिनी तुम्हारे मार्ग में नहीं पड़ेगी तो भी वहाँ अवश्य जाना; उज्जयिनी को न देखना मानो जीवन के प्रसाद से वंचित होता है। उज्जयिनी के प्रति इस आग्रह तथा आदर से यही प्रतीत होता है कि कालिदास का जीवन–काल मुख्य रूप से उज्जयिनी में ही व्यतीत हुआ था।

1.1.2 कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रचलित तीन मत

जैसा कि पहले कहा गया है, कालिदास के समय के सम्बन्ध में अनेक मत–मतान्तर पाए जाते हैं। उन सबका विवेचन न करके यहाँ केवल तीन मतों के विषय में जो किसी समय विद्वानों में मान्य भी रहे हैं, दिये जाने वाले साक्ष्य तथा युक्तियों की ओर संकेत करना ही पर्याप्त होगा। यह उल्लेखनीय है कि कालिदास के संबंध में प्रचलित यह तीनों मत इस धारणा पर बनाये गए हैं कि कालिदास किसी प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य का आश्रित कवि था, जिसने म्लेच्छों का संहार करके ब्राह्मण–धर्म तथा संस्कृति का उद्धार किया था। इन तीनों में तिथि–विषयक भेद का कारण केवल विक्रमादित्य के व्यक्तित्व की पहचान में अंतर है। ये तीन मत इस प्रकार हैं :–

1. प्रो॰ मैक्समूलर का मत कालिदास ईसा की छटी शताब्दी में हुए।
2. भारतीय परम्परा– ईसा से 57 वर्ष पूर्व जब विक्रम संवत् का आरम्भ हुआ, उसी समय कालिदास हुए।
3. पाश्चात्य विद्वानों का मत–गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य में 400 ई. के आसपास कालिदास हुए।

(1) प्रो॰ मैक्समूलर द्वारा स्थापित छठी शताब्दी का मत

प्रो॰ मैक्समूलर ने बताया कि विदेशियों के आक्रमण के फलस्वरूप ईसा की प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में संस्कृत की साहित्यिक प्रगति सर्वथा अवरूद्ध हो गई थी, फिर छठी शताब्दी में जाकर संस्कृत का पुनरुत्थान हुआ। उसी पुनरुत्थान काल में कालिदास उत्पन्न हुए। मैक्समूलर का यह मत फर्ग्युसन के विक्रमादित्य सम्बन्धीमत पर आश्रित था। फर्ग्युसन ने यह प्रकट किया था कि 544 ई. में विक्रमादित्य नामक सम्राट ने शकों को परास्त किया और उस विजय के उपलक्ष्य में विक्रमादित्य ने विक्रम–संवत् आरम्भ किया, परन्तु उस संवत् को महत्त्व देने के लिए उसे 600 वर्ष पूर्व की तिथि से अर्थात् ईसा से पूर्व 56–57 वर्ष से आरंभ किया। इसी विक्रमादित्य की सभा के 9 रत्नों में से एक कालिदास भी थे। इस प्रकार मैक्समूलर के अनुसार कालिदास का समय 544 ई. के आसपास छठी शताब्दी में था।

परन्तु इस समय यह मत बिल्कुल अप्रमाणित सिद्ध हो चुका है, क्योंकि फलीट की भारतीय शिलालेखों की खोज ने फर्ग्युसन के विक्रम संवत् संबंधी मत को सर्वथा खण्डित कर दिया है, क्योंकि यह प्रमाणित कर दिया है, कि 544 ई. से कम से कम 100 वर्ष पूर्व भी विक्रम–संवत् मालव संवत् के नाम से प्रचलित था। इस प्रकार मैक्समूलर के मत का आधार ही समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस बात की बहुत कम संभावना है कि शक लोग छठी शताब्दी ईस्वी के मध्य में पश्चिमी भारत से निकाले गये हों, क्योंकि वह प्रदेश 100 वर्ष पूर्व ही गुप्त सम्राटों द्वारा जीता जा चुका था। साथ ही यह ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि दूसरे विदेशी अर्थात् हूण (न कि शक) छठी शताब्दी के प्रथम भाग में भारत से निकाले गये थे, परन्तु उन्हें विक्रमादित्य ने नहीं, प्रत्युत एक अन्य राजा यशोमन् विष्णुवर्धन ने निकाला था। इस प्रकार छठी शताब्दी में ऐतिहासिक दृष्टि से किसी विक्रमादित्य नाम के राजा का चिह्न भी नहीं मिला।

मैक्समूलर के छठी शती में संस्कृत के पुनरुत्थान के सिद्धान्त की कल्पना का एक कारण यह भी था कि उस समय छठी शती से पूर्व जितने भी शिलालेख उपलब्ध हुए थे, वे सब प्राकृत भाषाओं में थे। परन्तु अब ईसा की प्रथम पाँच शताब्दियों के शिलालेखों से यह प्रमाणित हो गया है कि उस सारे समय में संस्कृत काव्य शैली का बराबर प्रचलन रहा था और यह भी स्पष्ट हो चुका है कि बौद्ध कवि अश्वघोष ने ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में बुद्धचरित और सौन्दरनन्द जैसे संस्कृत के महाकाव्य लिखे थे। इस प्रकार छठी शताब्दी में कालिदास की तिथि मानने का मत सर्वथा खण्डित हो चुका है।

(2) भारतीय परम्परा : ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी

भारतीय परम्परा कालिदास को ईसा से 57 वर्ष पूर्व मानने के पक्ष में है। यह मत भारत से बाहर कहीं भी मान्य नहीं है, इसलिए इसे भारतीय मत कहा जा सकता है, यद्यपि अनेक भारतीय विद्वान् भी इस मत को नहीं मानते हैं। विक्रम संवत् 2000 वर्ष पूर्ण होने पर भारत में विक्रम द्विसहस्राब्दी मनाई गई थी। उसी समय से इस मत का अधिक जोर से प्रतिपादन किया जाने लगा है। यह स्पष्ट है कि इस मत के पीछे वैज्ञानिक दृष्टि की अपेक्षा भावुकता, केवल एक परम्परा की रक्षा और कालिदास को अधिक प्राचीन सिद्ध करने की भावना अधिक है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक कोई राजा मानने का मुख्य आधार केवल विक्रम संवत् का प्रचलन और क्षेमन्द्र के कथासाहित्य में आई महेन्द्रादित्य और उसके पुत्र विक्रमादित्य की कथा है। यह स्मरण रहे कि कथासरित्सागर ईसा की 13वीं शताब्दी का ग्रन्थ है, जिसका आधार ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में गुणाढ्य की बृहत कथा से कथासरित्सागर में परिवर्धन एवं संशोधन हुए हैं। कालिदास को विक्रमादित्य के साथ जोड़ने का भी मुख्य कारण ज्योतिर्विदाभरण के ऊपर उद्धृत श्लोक में संनिहित परंपरा ही है। इस परंपरा से मिले संकेत के आधार पर कुछ भारतीय विद्वानों ने कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में 'महेन्द्र' और 'विक्रम्' शब्दों के एकाधिक प्रयोग में कालिदास द्वारा कथासरित्सागर की कथा को राजा महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य की ओर किया

गया निर्देश माना है और इस महेन्द्रादित्य तथा विक्रमादित्य के शैवमतावलम्बी होने को भी इस बात की पुष्टि के लिए युक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रो॰ राय ने प्रयाग के समीप भीटा स्थान में पाई एक प्राचीन मुद्रा को, जिस पर अंकित चित्र कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम दृश्य से बिल्कुल मिलता–जुलता है, कालिदास के बाद की मानकर तथा यह मानकर कि यह मुद्रा शुंग काल (182 ई. पू. 92 ई. पू.) की है, कालिदास के समय को ई. पू. प्रथम शताब्दी में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। मेघदूत के 31वें पद्य में अवन्तिदेश में वृद्धों द्वारा उदयन के कथा–प्रसंगके निर्देश को भी कालिदास के उदयन का समीपवर्ती होने में युक्ति रूप में प्रस्तुत किया गया है। कुछ विद्वनों ने रघुवंश महाकाव्य में सूर्य–वंश वर्णन की प्रेरणा का स्रोत इस तथ्य में देखा है कि कथासरित्सागर के नायक परमारवंशी राजा महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य सूर्यवंशी थे। वे विद्वान् कालिदास के ग्रंथों में विशेषतया अभिज्ञानशाकुन्तल में प्राचीन स्मृतियों के दण्ड–विधान की छाया में भी कालिदास को ई0 पूर्व प्रथम शती का कवि सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

इस मत का एक बड़ा दोष यह है कि प्रथम शताब्दी में किसी विक्रमादित्य नाम के राजा जाने का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। क्षेमेन्द्र के कथासरित्सागर के आधार पर जिसकी रचना के उद्देश्य का निश्चय नहीं किया जा सकता है और जिसमें प्रायः अन्धविश्वासपूर्ण चमत्कारी घटनाओं का संग्रह पाया जाता है, किसी कथा के नायक को ऐतिहासिक मानना ठीक नहीं है। फिर धुंधले एवं संदिग्ध संकेतों के आधार पर उसके साथ कालिदास का संबंध जोड़ लेना तो निश्चय रूप से आपत्ति पूर्ण है। प्रो॰ राय ने भीटा की जिस मुद्रा को अभिज्ञानशाकुन्तल के दृश्य पर आधारित माना है उसे पुरातत्त्व विभाग के अधिकारियों ने वैसा स्वीकार नहीं किया है। मेघदूत में उदयन का निर्देश अथवा रघुवंश में सूर्यवंश के राजाओं का वर्णन कालिदास का समय निश्चित करने अथवा कालिदास का परमारवंशी राजा विक्रमादित्य से संबंध स्थापित करने में सहायक नहीं हो सकता है, क्योंकि विक्रमादित्य के समान राजा उदयन भी लंबे समय तक भारत में प्रचलित लोक–कथाओं का नायक रहा है, आज भी उदयन के विषय में साहित्य की रचना हो रही है। कालिदास ने विक्रमोवंशीय नाटक में चन्द्रवंशी पुरूरवस् को भी अपना चरित्र–नायक बनाया है।

(3) कालिदास भारत के स्वर्णयुग गुप्तकाल का कवि

कालिदास के विषय में प्रचलित तीसरा मत यह है कि कालिदास भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्ण युग का कवि था जो कला और समृद्धि की दृष्टि से गुप्त सम्राटों में से चन्द्रगुप्त द्वितीय (लगभग 357 ई. 413 ई.) और स्कन्दगुप्त (455 ई.–470 ई.) ने विक्रमादित्य की उपाधी धारणा की थी। इसलिए वह विक्रमादित्य परम्परा के अनुसार कालिदास जिसकी सभा के नौ रत्नों में से एक था, सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय था। विन्सेंट स्मिथ ने यह मत प्रकट किया है कि कालिदास सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त तीनों सम्राटों की सभा में रहा होगा। इसके पश्चात् विद्वान प्रायः कालिदास को गुप्त–कालीन कवि मानते हैं और भारतवर्ष से बाहर यही मत सबसे अधिक प्रमाणिक माना जाता है। इस मत के अनुसार कालिदास का समय ईसा की चौथी और पाँचवी शताब्दी के सन्धि काल में 400 ई. के लगभग माना जाता है। इस मत की पुष्टि में जो कारण दिये जाते हैं, वह निम्न प्रकार हैं :–

1. मध्यभारत के मन्दसौर नामक स्थान में 473 ई. का एक शिलालेख पाया गया है, जिसमें वत्सभट्टि नामक एक कवि की रचना अंकित है। इस रचना में कई जगह कालिदास के ऋतुसंहार और मेघदूत की झलक इतनी स्पष्ट है कि यह मानना पड़ता है कि वत्सभट्टि (एक अप्रसिद्ध और छवि कवि) ने महान् कवि कालिदास के काव्यों से यह पदावली ली है। इसलिए यह स्पष्ट है कि कालिदास का समय 473 ई. से पूर्व होना चाहिए और यह समय अश्वघोष की तिथि द्वितीय शताब्दी के बाद का होना चाहिए।
2. कालिदास की सारी रचनाएँ यह स्पष्ट कर रही हैं कि कालिदास का समय, वैभव और समृद्धि का समय है, जबकि सर्वतोमुखी उत्कर्ष की भावना ओत–प्रोत हो रही थी। द्वितीय शती और 473 ई. के समय हो सकता है तो वह चन्द्रगुप्त द्वितीय (380–413 ई.) का राज्यकाल ही हो सकता है, जिस समय भारत का उत्कर्ष चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था।

3. भास कवि का स्वतः कालिदास ने उल्लेख किया है। इस प्रकार भास कालिदास का पूर्ववर्ती था और भाषा की तुलना में यह भी स्पष्ट हो जाता है किवह अश्वघोष का उत्तरकालीन है। कालिदास की तिथि 400 ई. के लगभग मानने से भास का समय भी तृतीय शती या चतुर्थ शती का प्रारम्भिक भाग हो जाता है। इस प्रकार इन तीनों महाकवियों की तिथि का सामंजस्य बन जाता है।

4. कालिदास ने रघुवंश में जो अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन किया है, वह समुद्रगुप्त द्वारा किये गये अश्वमेघ का संस्मरण मात्र प्रतीत होता है।

5. यह भी कल्पना की गई कि 'कुमारसम्भवम्' की रचना भी सम्भवतः कुमारगुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में ही की गई थी। इसके अतिरिक्त कालिदास द्वारा 'गुप्' धातु का प्रयोग, कुमारसम्भव काव्य के नाम में 'कुमार' शब्द, रघुवंश में हूणों के उल्लेख, रघु–दिग्विजय और समुद्रगुप्त–दिग्विजय में साम्य आदि को भी इस मत की पुष्टि में प्रमाण के रूप में दिया जाता है।

इस मत की पुष्टि में दी जाने वाली युक्तियों में भी प्रायः वैसे ही दोष हैं, जो दोष पहले ई. पू. प्रथम शती के मत में दिखलाए गये हैं, क्योंकि यह मत भी अनावश्यक रूप में परम्परा का आश्रय लेकर कालिदास को विक्रमादित्य का आश्रित कवि मानता है तथा इस मत की पुष्टि में दी जानेवाली युक्तियाँ भी संदिग्ध एवं अस्पष्ट संकेतों पर आधारित हैं और उन युक्तियों को अन्यथा भी प्रयुक्त किया जाता है और कुछ युक्तियों का अन्यथा प्रयोग किया भी गया है, फिर भी अधिकांश आलोचक कालिदास को गुप्त–काल का कवि मानकर उसका समय 400 ई. लगभग मानते हैं, केवल भारतीय आलोचकों का एक वर्ग कालिदास को ई. पू. प्रथम शती का मानता है।

कालिदास संबंधी वर्तमान ज्ञान की दशा में हमें इतने मात्र से संतोष कर लेना चाहिये कि कालिदास का कार्य काल ई. पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर ईसा की सातवीं शताब्दी की अवधि में कहीं पर था।

1.1.3 कालिदास की रचनाएं

कालिदास के नाम के साथ 41 रचनाएं जुड़ी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ भी किसी महत्त्वपूर्ण रचना के रचयिता के विषय में सन्देह हुआ उसके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया गया। इस प्रकार अप्रमाणिक रचनाओं को छोड़कर कालिदास की सात रचनाएं मानी जाती हैं, जिनमें तीन नाटक, दो महाकाव्य और दो गीतिकाव्य हैंः–

नाटक :– (1) मालविकाग्निमित्र

(2) विक्रमोर्वशीय

(3) अभिज्ञानशाकुन्तल

महाकाव्यः– (1) कुमारसंभव

(2) रघुवंश

गीतिकाव्यः– (1) ऋतुसंहार

(2) मेघदूत

काल–क्रम की दृष्टि से ऋतुसंहार कालिदास की प्रथम रचना है। इसके बाद वह मानविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय आते हैं; तत्पश्चात् कुमारसम्भव। उसके बाद मेघदूत और रघुवंश है और सबसे बाद में अभिज्ञानशाकुन्तल प्रतीत होती है। इन सारी रचनाओं में कभी–कभी ऋतुसंहार के विषय में संदेह किया जाता है कि वह कालिदास की रचना है अथवा नहीं? इसका प्रथम कारण तो यह है कि मल्लिनाथ ने (जिसने कालिदास के सभी महाकाव्यों पर टीका लिखी है) ऋतुसंहार पर टीका नहीं लिखी। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण यह है कि

अलंकार के ग्रंथों में जहाँ कालिदास के सभी ग्रंथों से उदाहरण लिये गए हैं, ऋतुसंहार से कोई उदाहरण नहीं लिया गया। परन्तु इन सब युक्तियों के होते हुए भी ऋतुसंहार को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर वह कालिदास की ही रचना प्रतीत होती है। निःसन्देह वह कालिदास की प्रथम और अपरिपक्व रचना है, इसलिए वह अन्य रचनाओं के समान उत्कृष्ट नहीं है।

1.1.4 कालीदास की काव्यकला

कालिदास संस्कृत साहित्यकाल के सर्वोज्जवल नक्षत्र हैं। सच कहा जाए तो कालिदास में संस्कृत के काव्यों के स्पृहणीय स्वरूप का चरम विकास हुआ है। कालिदास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह वातावरण की सृष्टि करके थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ प्रकट कर देता है। वह स्वयं थोड़ा कहकर शेष की अनुभूति के लिये अपने पाठकों को अकेला छोड़ देता है। उसने शब्दों में केवल चुनाव पर ध्यान दिया है, भाषा को संवारा है, परंतु परवर्ती कवियों की भाँति उसे अलंकारों के भार से भारी–भरकम नहीं होने दिया है। कालिदास प्रेम और सौंदर्य का कवि है। प्रकृति को उसने प्रेम और सौंदर्य के साहचर्य में ही देखा है, अतः उसने प्रकृति में भी मानवीय चेतना के दर्शन किये हैं।

1.1.5 मेघदूत में प्रेम का चित्रण

मेघदूत श्रृंगार–रस का काव्य है। उसमें जिस प्रेम या रति भाव का चित्रण हुआ है, ऐन्द्रियिक वासना है। लेकिन फिर भी मेघदूत का श्रृंगार केवल एक स्थान को छोड़कर शिष्टता की सीमा को नहीं लांघता पूर्वमेघ में रति–भाव के जितने संकेत हुए हैं, उसमें से कोई भौतिक या ऐन्द्रियिक वासना के ऊपर नहीं उठ सकते हैं, परन्तु उत्तरमेघ में हमें ऐन्द्रियिक वासना के साथ–साथ आध्यामिक प्रेम के भी संकेत मिलते हैं। अलकापुरी के वर्णन में जहाँ यक्षों के उत्तम स्त्रियों के साथ मधुपान अथवा देवाग्नाओं के प्रसाधन तथा उपभोग में ऐन्द्रियिक वासना की अभिव्यक्ति हुई है, वहाँ यक्ष और यक्ष पत्नी की पारस्परिक निष्ठा में उस प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है, जो पार्थिव धरातल से ऊपर उठकर दिव्यता को प्राप्त हो गया है। सचमुच विरह का अनल दो हृदयों को तपाकर उनके प्रेम के वासना–मल को जलाकर उसे आध्यात्मिक प्रेम का दिव्य कुन्दन बना देता है। यक्ष को विश्वास है कि उसकी प्रिया उसके विरह की व्यथा में क्षीण हो गई होगी, व उसे रात्रि में नींद भी न आती होगी और विरह–शय्या पर एक करवट पड़ी रहती होगी। यक्ष अपने संदेश में स्वयं भी उसे विश्वास दिलाता है कि वह प्रकृति में उसी के सादृश्य की खोज करता रहता है और उसका चित्र बनाकर उसके मिलन की कामना करता रहता है। वह उत्तर से आने वाली पवन का गाढ़ आलिंगन करता है कि सम्भवतः पवन उसकी प्रिया के अंगों का स्पर्श करके आया होगा।

यक्ष अपनी प्रिया को सच्चाई का विश्वास दिलाने के लिये कहता है कि लोग यह बात झूठ ही कहते हैं कि प्रेम वियोग में नष्ट हो जाता है। सच तो यह है किवह वियोग में बढ़कर राशि हो जाता है। कालिदास ने यक्ष और उसकी प्रिया के प्रणय की एकनिष्ठता से सचमुच मानव के लिये आदर्श प्रेम का प्रतीक स्थापित किया है। कालिदास के अन्य काव्यों की भाँति मेघदूत से भी हमें यह अमर संदेश मिलता है कि शारीरिक सौन्दर्य एवं भौतिक वासना पर आधारित प्रेम नश्वर एवं क्षणिक होता है। वह कभी भी सुखकारी और शान्तिप्रद नहीं होता। परस्पर समर्पण, त्याग एवं कर्त्तव्य की भावना ही प्रेम को अनश्वर दिव्य तथा बनाती है।

1.1.6 मेघ का मार्ग

मेघदूत के पूर्व भाग में कालिदास ने रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग में पड़ने वाले प्रसिद्ध स्थानों, नदियों, पर्वतों तथा तीर्थ स्थानों का ऐसा लुभावना चित्रण किया है, जिसे सुनकर यक्ष का संदेश ले जाने वाला मेघ ही नहीं, अपितु पाठक भी तुरंत प्रस्थान कर देने का उद्यत हो जाए। अनेक विद्वानों ने कालिदास के भौगोलिक ज्ञान की प्रशंसा की है और उन्होंने कालिदास को इस बात का श्रेय दिया है कि मेघदूत में कालिदास ने मेघ का जो मार्ग बतलाया है, वही सचमुच मानसूनी हवाओं का मार्ग होता है। परन्तु यहाँ इस तथ्य की जाँच करना हमारे लिये कठिन है... काव्य

की समीक्षा की दृष्टि से भी इसका कोई महत्त्व नहीं है।

यक्ष रामगिरि के आश्रमों में वास कर रहा था और वहीं से अपने मेघ से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने की याचना की। रामगिरि नागपुर से उत्तर में कुछ दूरी पर स्थित कोई पहाड़ी थी, जिसे रामटेक कहा जाता है। रामगिरि से उत्तर की ओर चलते हुए सबसे पहला प्रदेश 'माल' नाम का पठार पड़ता है। उससे पश्चिम–उत्तर की ओर चलते हुए अगला स्थान आम्रकूट नाम का पर्वत आता है, उससे आगे विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी (बाद) में नर्मदा (रेवा) नदी बल खाती हुई मिलती है। उसके बाद छोटे–मोटे अनेक पर्वतों को पार करके दशार्ण (आधुनिक) छत्तीसगढ़ नाम का जनपद आ जाता है, उसकी विदिशा (आधुनिक भीलसा या बीसनगर) राजधानी बड़ी प्रसिद्ध थी और जो वेत्रवती (बेतवा) के किनारे स्थित थी। विदिशा के समीप 'नीचैः' नामक गिरि को पार करके मेघ को पश्चिम की ओर मुड़कर 'अवनति' (मालवा का पश्चिम भाग जनपद की राजधानी उज्जयिनी) जाने के लिये कहा गया है, यद्यपि वैसा करने से उसका रास्ता टेढ़ा हो जायेगा। विदिशा से उज्जयिनी (विशाला, आधुनिक उज्जैन) पहुँचने में रास्ते में निर्विन्ध्या और शिप्रा नदियाँ हैं। वहाँ महाकाल का मन्दिर भी द्रष्टव्य स्थान था, जो गन्धवती नदी के किनारे स्थित था।

उज्जयिनी से आगे बढ़कर गम्भीरा नदी (शिप्रा की कोई सहायक नदी) पड़ती है और देवगिरि (आधुनिक देवगढ़) आ जाता है। देवगिरि में स्कन्द का प्रसिद्ध पुण्यधाम था। इसके पश्चात् काफी रास्ता पार करने के बाद चर्मण्वती नदी आ जाती है। चम्बल नदी को पार करके दशपुर (आधुनिक मन्सौर या दसोर) नगर आ जाता है। इसके बाद ब्रह्मावर्त जनपद आ जाता है, जिसमें कुरूक्षेत्र का प्रसिद्ध प्रदेश है, जहाँ महाभारत में प्रसिद्ध कौरव पाण्डवों का युद्ध हुआ था जिसमें परम–पावनी सरस्वती नदी बहती थी। कुरूक्षेत्र के मैदान को पार करके कनखल नामक स्थान आ जाता है, जहाँ गंगा का उद्‌गम स्थान हिमालय पर्वत आ जाता है। हिमालय में एक शिला में प्रकट शम्भु के चरणन्यास है, भक्त लोग श्रद्धा के साथ जिसकी परिक्रमा किया करते हैं। हिमालय के तट के समीप अन्य दर्शनीय स्थानों को देखते हुए आगे बढ़ने पर क्रौंचरन्ध्र आ जाता है और उसमें से होकर उत्तर की ओर बढ़ने पर कैलास पर्वत आ जाता है, जिसकी गोद में अलकापुरी विद्यमान है। कालिदास ने इस प्रकार मेघ मार्ग वर्णन के ब्याज से मध्यभारत से लेकर हिमालय की हिमाच्छादित धवल शिखरों तक मार्ग में पड़ने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्त्व के सभी मुख्य स्थानों का वर्णन दे दिया है।

1.1.7 खण्डकाव्यों या गीतिकाव्यों में मेघदूत का स्थान

संस्कृत–साहित्य में मेघदूत न केवल सर्वप्रथम खण्ड–काव्य है अपितु कविता की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ गीति–काव्य है। संस्कृत साहित्य में खण्डकाव्यों तथा दूतकाव्यों की परम्परा मेघदूत के पश्चात् ही प्रारम्भ हुई है। इतना ही नहीं बल्कि उत्तरवर्ती दूत–काव्य प्रायः मेघदूत के अनुसरण पर ही लिखे गये हैं और 'पार्श्वाभ्युदय तथा नेमिदूत' में तो मेघदूत के चरणों को समस्या पूर्ति की शैली में अपना लिया गया है।

1.2 इकाई के उद्देश्य

- महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व तथा कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे;
- मेघदूत की काव्यगतविशेषताओं का विश्लेषण कर पाएँगें;
- मेघदूत में वर्णित 'मेघ–मार्ग की समीक्षा कर पाएंगें;
- मेघदूत के अनुसार यक्ष के चरित्र से अवगत हो पाएगें;
- यक्ष के जीवन में आई घटनाओं को सहृदयता से अनुभव करेंगे।

1.3 मेघदूतम् (पूर्वमेघ)

काश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः

शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।1।।

अन्वयः—स्वाधिकारात्प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तंगमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योकेषु स्निग्धछायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसति चक्रे।

अनुवाद —अपने कर्त्तव्य में प्रसाद करने वाला, प्रिया के वियोग के कारण कठोर (प्रतीत होने वाला), वर्ष भर भोगे जाने वाले, स्वामी के शाप से नष्ट हुए गौरव वाला, कोई यक्ष (कुबेर कासेवक) जनक की पुत्री (सीता) के स्नान से पवित्र जलों वाले तथा घने छायादार वृक्षों वाले रामगिरि के आश्रमों में रहता था।

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी

नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्टः।

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।2।।

अन्वयः—अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स कामी तस्मिन् अद्रौ कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतजगप्रेक्षणीयं ददर्श।

अनुवाद —स्त्री से विरहित, स्वर्ण के कड़े के गिर जाने से सूने प्रकोष्ठ वाले, उस काम पीड़ित (यक्ष) ने उस पर्वत पर कुछ महीने बिताकर आषाढ़ मास के प्रथम दिन (पर्वत) के शिखर का आलिंगन करने वाला और टीले पर टक्कर मारने के खेल में झुककर दांत से प्रहार करते हुए हाथी के समान सुन्दर मेघ देखा।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो

रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।3।।

अन्वयः — कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा अन्तर्बाष्पः राजराजस्य अनुचरः चिरम् दध्यौ। मेघालोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथावृत्ति भवति कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे पुनः किम्?

अनुवाद —उत्कण्ठा की उत्पत्ति के कारणभूत उस (मेघ) के सामने किसी प्रकार खड़ा होकर अन्दर (स्थित) आंसुओं वाला, कुबेरका (वह) सेवक देर तक सोचता रहा। मेघ का दर्शन होने पर सुखी (व्यक्ति) का भी चित्त विकृत स्थिति वाला (व्याकुल) हो जाता है, कण्ठ का आलिग्न करने के अभिलाषी जन से दूर स्थित होने पर फिर (भला क्या कहना)?

प्रत्यासने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी

जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तम्।

स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै

प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।4।।

अन्वयः—नभसि प्रत्यासने दयिताजीवितालम्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमीं प्रवृत्ति हारयिष्यन् सः प्रीतः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।

अनुवाद —श्रावण मास के समीप होने पर प्रिया के प्राणों को सहारा देने की इच्छा वाले (अतः) मेघ द्वारा अपने कुशल—मग्ल का समाचार भेजने वाले उस (यक्ष) ने प्रसन्न होकर ताजे कुटज (चमेली के पुष्पों) से अर्ध्य दिये गये उस (मेघ) के लिये प्रेम—भरी बोली में 'स्वागत' कहा।

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः

संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।।5।।

अन्वयः —धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व? पटुकरणैः प्राणिभिः संदेशार्थाः क्व? इलि औत्युक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे, हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति)।

अनुवाद —'धुएं', प्रकाश, जल और वायु का सम्मिश्रण मेघ कहाँ और समर्थ इन्द्रियों वाले प्राणियों द्वारा ले जाए जाने योग्य संदेश रूपी वस्तुएँ कहाँ? इसका उत्कण्ठा के कारण विचार न करते हुए यक्ष ने उस (मेघ) से प्रार्थना की, क्योंकि काम—पीड़ित (प्राणी) चेतन और जड़ के विषय में स्वभाव से ही असमर्थ (होते हैं)।

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं

यांचा मोघा वरमधिगुणं नाधमे लब्धकामा।।6।।

अन्वयः—त्वां भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां वंशे जातं कामरूपं मघोनः प्रकृतिपुरुष जानामि, तेन विधिवशाद् दूरबन्धुः अहं त्वयि अर्थित्वंगतः, अधिगुणे मोघा या×चा वरम, अधमे लब्धकामा न।

अनुवाद —(मैं) तुम्हें संसार में प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक (नाम के मेघों) के कुल में उत्पन्न, इच्छानुसार रूपधारी (और) अन्द्र का प्रधान पुरुष जानता हूँ, इसलिये भाग्यवश दूर (देश में स्थित) स्वजन वाला मैं तुम्हारे प्रति याचक भाव को प्राप्त हुआ हूँ। उत्तम गुण वाले व्यक्ति से की गई विफल भी याचना अच्छी है; लेकिन निकृष्ट (व्यक्ति) से (की गई) सफल प्रार्थना अच्छी नहीं।

संतप्तानां त्वमवि शरणं तत्पयोद प्रियायाः

सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविलेषितस्य।

गन्तव्या ते वसतिरलकानाम यक्षेश्वराणां

बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।।7।।

अन्वयः—पयोद, त्वं संतप्तानां शरणम्, तत् धनपतिक्रोधविश्लेसितस्य मे संदेशं प्रियायाः हर। ते बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या अलकानाम यक्षेश्वराणां वसतिः गन्तव्या।

अनुवाद –हे जलद, तुम पीड़ितों के रक्षक हो, इसलिये कुबेर के क्रोध के कारण नियुक्त हुए मेरे संदेश को प्रिया के पास ले जाओ। तुम्हें कुबेर की नगरी अलका जाना होगा, जिसमें हेवलियाँ बाहरी बाग में स्थित शिव के सिर पर स्थित (चन्द्रमा की) चांदनी से धुली हैं।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः

प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः।

कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।।8।।

अन्वयः – प्रत्ययाद् आश्वसतयः पथिकवनिताः परवनपदवीम् आरूढं त्वाम् उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते। त्वयि सन्नद्धे (सति) विरहविधुरां जायां कः उपेक्षेत, अन्यः अयि जनः अहम्इव पराधीनवृत्तिः न स्यात्।

अनुवाद – (प्रिय–मिलन के) विश्वास के आश्वस्त होती हुई पथिकों की पत्नियाँ वायु के मार्ग (आकाश) में चढ़े हुए तुमको केशों के अग्रभागों को ऊपर को पकड़े हुई देखेंगी। तुम्हारे उमड़ने पर वियोग से व्याकुल पत्नी की कौन उपेक्षा करेगा, अन्य भी जो जन मेरे समान दूसरे के अधीन व्यवहार वाला न होगा।

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी

मव्यापन्नामविहितगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां

सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।।9।।

अन्वयः – अविहतगतिः दिवसगणनातत्पराम् एक पत्नीं तां भ्रातृजायाम् च अव्यापन्नाम् अवश्यं द्रक्ष्यसि; हि आशाबन्धः अंगनानां कुसुमसदृशं विप्रयोगे सद्यःपाति प्रणयि हृदयं प्रायशं रुणाद्धि।

अनुवाद – और बे–रोक टोक गति वाले (तुम) (अवधि के) दिन गिनने में लगी हुई, पतिव्रता (अपनी) उस भाभी को जीवित अवश्य देखोगे, क्योंकि आशा का बन्धन स्त्रियों के, फूल के समान (कोमल) वियोग में शीघ्र ध्वंसनशील प्रेमी हृदय को प्रायः रोके रखता है।

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।10।।

अन्वयः – यथा च अनुकूलः पवनः त्वां मन्दं मन्दं नुदति, अयं च ते सगन्धः चातकः वामः (सन्) मधुरं नदति, नूनं गर्भाधानक्षणपरिचयात् आबद्धमालाः बलाकाः नयनसुभगं भवन्तं खे सेविष्यन्ते।

अनुवाद – और जैसे कि अनुकूल पवन तुम्हें धीरे–धीरे ले जा रहा है और यह तुम्हारा सम्बन्धी चातक बांई ओर स्थित होकर मधुर शब्द कर रहा है, (उससे) निश्चित (ही) गर्भ–धारण रूपी उत्सव के अभ्यास के कारण पंक्तियाँ बनाये मादा बगुले दृष्टि को आनन्द देने वाले आपका आकाश में सेवन करेंगे।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां

तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभग गर्जितं मानसोत्काः।

आकैलासाद्बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः

संपत्स्यन्ते नभसि भवो राजहंसाः सहायाः।।11।।

अन्वयः –यत् च महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्यां कर्तुं प्रभवति ते तत् श्रमणसुभंग गर्जित श्रुत्वा मानसोत्काः बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः आ कैलासात् नभसि भवतः सहायता संपत्यस्यन्ते।

अनुवाद –और, जो पृथ्वी को उगे हुए कुकुरमुत्तों वाली (अतः) उपजाऊ बना सकता है, तुम्हारे उस कर्ण–प्रिय गर्जन को सुनकर मानस (नाम के सरोवर) के लिये उत्सुक? कमल–नाल के अंकुरों के खण्ड रूपी सम्बल (मार्ग का भोजन) वाले, राजहंस कैलास (पर्वत) तक आकाश में आपके साथी होंगे।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुंगमालिंगय शैलं

वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरंकितं मेखलासु।

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य

स्नेहिव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो बाष्पमुष्णम्।।12।।

अन्वयः –पुंसां वन्द्यैःरघुपतिपदैः मेखलासु अंकितं प्रियसखम् आमुं तुंगं शैलम् आलिंग्यआपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णं बाष्प मुंचतः यस्य स्नेहव्यक्ति भवतिः।

अनुवाद –लोगों द्वारा आराधनीय रघुपति (राम) के चरण चिह्नों से ढलानों पर अंकित, प्रिय मित्र, इस ऊँचे पर्वत का आलिंगन करके (इससे) विदा लो, समय–समय पर आपका सम्पर्क पाकर, मानो, लम्बे वियोग से उत्पन्न गर्म वाष्प (व्यङ्ग्यार्थ–आंसू) छोड़ते हुए जिसके स्नेह का आविर्भाव होता है।

मार्ग तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं

संदेश मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।

खिन्नः खिन्न शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।।13।।

अन्वयः –हे जलद्, तावत् कथयतः (मतः) त्वत्प्रयाणानुरूपं मार्ग शृणु, यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य क्षीणः क्षीणः च स्रोतसां परिलघु पयः उपभुज्य गन्तासि; तदनु में श्रोत्रपेयम् संदेशं श्रोष्यसि।

अनुवाद –हे मेघ, अब पहले (मुझे) कहने वाले से अपनी यात्रा के योग्य मार्ग को सुन, जिस (मार्ग) में बार–बार थका हुआ (तू) पर्वतों पर पैर रखकर और बार–बार क्षीण हुआ (तू) नदियों के बहुत हल्के जल का उपभोग करके जायेगा। तत्पश्चात् तू कानों द्वारा पीने योग्य मेरे संदेश को सुनना।

अद्रेः श्रृंगं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि–

र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धांगनाभिः।

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।।14।।

अन्वयः –पवनः अद्रेः श्रृंगं हरति किंस्वित् इति उन्मुखीभिः सिद्धांगनाभिः चकितचिकितै दृष्टौत्साहः पथिः दिङ्नागानां स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् अस्मात् स्थानात् उदङमुखः खम् उत्पत।

अनुवाद –वायु पर्वत के शिखर को लिये जा रहा है क्या इस आशटा से ऊपर की ओर मुख वाली, भोली

सिद्ध–युवतियों द्वारा अत्यधिक चकित होकर देखे गये उत्साह वाला, मार्ग में दिग्गजों के मोटे सूंडों के आक्रमणों को बचाता हुआ तू इस हरे बांसों वाले स्थान से उत्तर की ओर मुख वाला हो कर आकाश में उड़ जा।

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्

वल्मीकाग्रात्प्रभवति धुनः खण्डमाखण्डलस्य।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते

बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।।15।।

अन्वयः – रत्नच्छायाव्यतिकरइव प्रेक्ष्यम् एतत् आखण्डलस्य धुनः खण्डं पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति, येन ते श्यामं वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः श्यामं वपुरिव अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते।

अनुवाद –मणियों की कान्तियों के मेल के समान दर्शनीय यह इन्द्र के धनुष का खण्ड सामने बाम्बी के शिखर से प्रकट हो रहा है, जिसने तेरा श्यामल शरीर चमकती हुई कान्ति वाले मोर के पंख से ग्वाले के वेश वाले(विष्णु) (कृष्ण) के श्यामल शरीर के समान अत्यधिक शोभा को प्राप्त करेगा।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासनभिज्ञैः

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं

किचिंत्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।16।।

अन्वयः – कृषिफलं त्वयि आयत्तम् इति प्रीतिस्निग्धैः भ्रूविलासानभिज्ञैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः मालं सद्यः सीरोत्कषणसुरभि (यथा स्यात्तथा) क्षेत्रं आरुह्य किचिंत् पश्चात् ब्रज, भूयः लघुगतिः उत्तरेण एव (व्रज)।

अनुवाद –खेती का फल तेरे अधीन (है), इसलिये हर्ष से चमकने वाली भौंहों के मटकाने से अपरिचित, गांव की स्त्रियों की आंखों से पीया जाता हुआ (तू) माल नाम के देश पर, (जैसे कि वह वर्षा के बाद) तुरन्त हल से जोतने के कारण सुगन्धित (हो जाये), चढ़कर कुछ पश्चिम की ओर जा (और) फिर तीव्र गति वाला (होकर) उत्तर की ओर ही जा।

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना

वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय

प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः।।17।।

अन्वयः –आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतं त्वां साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति। क्षुद्रः अपि मित्रे संश्रयाय प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखः न भवति। यः तथा उच्चैः (सः) पुनः किम्?

अनुवाद –आम्रकूट पर्वत मूसलाधार वर्षा से वन के उत्पात को शान्त कर देने वाले (और) मार्ग की थकान से व्याप्त हुए तुमको भली–भाँति सिर पर धारण करेगा। अधम(पुरुष) भी मित्र के आश्रय के लिये आने पर पहले उपकारों का ध्यान करके मुख नहीं मोड़ता; जो (पर्वत) उतना ऊँचा है, (वह) फिर कैसे (मुख मौड़ेगा)।

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै

स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।18।।

अन्वयः –परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे (सति); मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुव स्तनः इव नूनम् अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थां यास्यति।

अनुवाद –पके हुए फूलों से चमकने वाले वन के आमों से ढके हुए भागों वाला (आम्रकूट) पर्वत, चिकनी चोटी के समान रंग वाले तेरे चोटी पर चढ़ जाने पर, (जो पर्वत), मानो, बीच में काला (और) शेष विस्तृत भाग में पीला–सा पृथिवी (रूपी स्त्री) का स्तन (हो), अवश्य ही देवों के जोड़ों द्वारा दर्शनीय अवस्था को प्राप्त कर लेगा।

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधू भुक्तकुंजे मूहूर्तं

तोयोत्सर्गद्रततर गतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलवषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।।19।।

अन्वयः – वनचरवधुभुक्तकुंजे तस्मिन् मुहुर्त स्थित्वा तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः तत्परं वर्त्म तीर्णः उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्ण रेवां गजस्य अंगे भक्तिच्छेदैः विरचितां भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।

अनुवाद –वनवासियों की स्त्रियों द्वारा भोगे गये कुज्जों वाले उस (आम्रकूट पर्वत) पर थोड़ी देर ठहर कर जल बरसा देने के कारण अधिक तेज गति वाला होकर (और) उससे आगे के मार्ग को पार करके (तुम) चट्टानों के कारण ऊबड़–खाबड़, विन्ध्य पर्वत की तलहटी में खण्ड–खण्ड हुई नर्मदा नदी को हाथी के शरीर पर बेल बूटों के नमूनों से की गई सजावट के समान देखोगे।

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि–

र्जम्बूकुंजप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।

अन्तःसारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।20।।

अन्वयः –वान्तवृष्टिः (त्वम्) तिक्तैः वनगजमदैः वासितं जम्बूकुज्जप्रति हतरयं तस्या तोयम् आदाय गच्छे। घन। अनिलः अन्तःसारं त्वां तुलयितुं न शक्ष्यति। हि रिक्तः लघुः भवति, पूर्णता (भवति)।

अनुवाद –वर्षा कर चुका हुआ (तू) कटु गन्ध वाले, वन के हाथियों के मद से सुगन्धित (और) जामुन के वृक्षों के कुंज से रुके हुए वेग वाले उस (नर्मदा) के जल को लेकर जाना। हे मेघ! वायु अन्दर (जल रूप) बल वाले तुझे उठा न सकेगा, क्योंकि खाली होते हुए (तो) सब ही हल्के होते हैं, भरा हुआ होना भारीपन का कारण होता है।

नीपं दृष्टवा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै

राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।

जगग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः।

सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।21।।

अन्वयः –अर्धरूढ़ैः केसरैः हरितकपिशं नीपं दृष्टवा, अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा, अरण्येषु उर्व्याः अधिकसुरभि गन्धं च आघ्राय सारंगाः जललवमुचः ते मार्ग सूचयिश्यन्ति।

अनुवाद–आधे उगे हुए केसरों से हरे और श्याम कदम्ब के फूल को देखकर दलदलों में पहली बार प्रकट हुई कलियों वाली केलियों को खाकर और जंगलों में पृथिवी की अत्यन्त सुगन्धि वाली गन्ध को सूंघकर हरिण जलकणों को बरसाने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे।

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः

श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः।

त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यनित सिद्धाः

सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिंगितानि।।22।।

अन्वयः –अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धा स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरी संभ्रमालिंगितानि आसाद्य त्वां मानयिष्यन्ति।

अनुवाद –जल–कणों को लेने में चतुर चातकों को देखते हुए, सोपान बनी हुई बगुलों की पंक्तियों को गिनकर दिखाते हुए सिद्ध लोग (तुम्हारे) गर्जन के समय कंप–कंपी सहित, प्रिय, पत्नियों के घबराहट से (किये गये) आलिग्नों को पाकर तुम्हें (बहुत) मानेंगे।

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः

कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।

शुक्लापांगैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः

प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्।।23।।

अन्वयः –सखे मत्प्रियार्थ द्रुतम् यियासोः अपिते ककुभसुरभौ पर्वते–पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि, सजलनयनैः शुक्लापांगैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कथमपि आशु गन्तुं व्यवस्येत्।

अनुवाद–हे मित्र! मेरे प्रिय के लिए शीघ्र जाने की इच्छा करते हुए भी तुम्हें अर्जुन नामक वृक्षों से सुगन्धित पर्वत पर देर हो जाने की संभावना कर रहा हूँ, (लेकिन हर्ष के कारण) अश्रु–युक्त नेत्रों वाले मयूरों द्वारा (अपनी) बोली को 'स्वागत' (वचन) बनाकर अगवानी किये गये आप जैसे–तैसे शीघ्र चलने का प्रयत्न करें।

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै

र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः

संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः।।24।।

अन्वयः–त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छोयापवनवृतयः गृहवलिभुजां नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः परिणतफलश्यामजम्बुवनान्ताः कतिपयदिनस्थायिहंसाः (च) संपत्स्यन्ते।

अनुवाद –तेरे समीपवर्ती होने पर दशार्ण नाम का जनपद अग्रभाग में खिले हुए केतकी के पुष्पों के पीली सी क्रान्ति वाली उपवनों की बाड़ों वाला, घर की बलि खाने वाले (कौवे आदि पक्षियों) के घोंसला बनाने कर्मों से भरे हुए गांव के मन्दिरों वाला, पके हुए फलों से काले हुए जामुन के वनों के भाग वाला और कुछ दिन ठहरते हुए हंसों वाला हो जायेगा।

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।

तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्

सभ्रूभंगंमुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।।25।।

अन्वयः –दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां तेषां राजधानीं गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलं फलं लब्धा, यस्मात् वेत्रवत्याः स्वादु चलोर्मि पयः सभ्रूभंगमुखमिव तीरोपानतस्तनितसुभगं पास्यसि।

अनुवाद –दिशाओं में प्रसिद्ध विदिशा नाम वाली उसकी (दशार्णों की) राजधानी में पहुंचकर तुरन्त कामुक होने का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जायेगा, क्योंकि (तुम) वेत्रवती (नाम की नदी) के स्वादु (और) चंचल तरगें वाले जल का, मानो भ्रू–भग युक्त मुख का, तीन प्रान्त में गर्जन से सुन्दर लगते हुए पान करोगे।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो

स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि।।26।।

अन्वयः –तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बेः वत्संपर्कात् इव नीचैराख्यं अधिवसेः यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि योवनानि प्रथयति।

अनुवाद –(तुम) वहाँ विश्राम के लिये विकसित पुष्पों वाले कदम्बों से (युक्त), मानो, तुम्हारे संसर्ग के कारण रोम हर्ष हुए, 'नीचैः' नाम के पर्वत पर ठहरना, जो (पर्वत) वेश्याओं की प्रेम–क्रीड़ाओं की गन्ध को उगलने वाले शिलागृहों से नगर–निवासियों के उत्कण्ठ यौवनों को प्रकट करता है।

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिंचन्

उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।

गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां

छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्।।27।।

अन्वयः –विश्रान्तः सन् वननदीतीरजानाम् उद्यानानां यूथिकाजालकानि नवजलकणैः निषिच्चन् गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्त कर्णोत्पलानां पुष्पवालीमुखानां छायादानात् क्षणपरिचितः व्रज।

अनुवाद –(वहाँ) आराम करके बननदी के किनारे उगे हुए बाणों की जूही की कलियों की नये जल की बूंदों से सींचते हुए (और) पुष्प बीनने वाली स्त्रियों (मालिनों) के मुखों को, जिनके कानों के कमल गालों के पसीने पोंछने में मसलने से मुरझा गये है, छाया देने के कारण (उनसे) क्षण भर परिचित होते हुए (आगे) जाना।

वक्रः पन्था यद्यपिः भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।

विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौरांगनानां

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि।।28।।

अन्वयः –यद्यपि उत्तराशां प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः वक्रः (तद्पि) उज्जयिन्याः सौधोत्संगप्रणयविमुखः मा स्म भूः। तत्र पौरांगनानां विद्युद्दाम स्फुररितचकितैः लोलापांगः लोचने न रमससे यदि, वंचितः असि।

अनुवाद –यद्यपि उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने वाले आपका रास्ता टेड़ा (पड़ेगा),(फिर भी) उज्जयिनी (नगरी के) महलों की अटारियों के साथ से पराङ्मुख मत होना, वहाँ उज्जयिनी में नगर की सुन्दरियों के बिजली की रेखा की चमक से चकित हुए, चंचल चितवन वाले (तुमने) यदि खेल न किया तो तुम (निश्चित ही) ठगे गये।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकांचीगुणायाः

संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।

निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य,

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।29।।

अन्वयः–वीचिक्षोभस्मतनितविहगश्रेणिकाचीगुणायाः स्खलितं सुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः पथि संनिपत्य रसाभ्यन्तरः भव। हि स्त्रीणां प्रियेषु विभ्रमः प्रणयवचनम्।

अनुवाद – तरंगों के चलने से शब्द करते हुए, पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ी वाली, लड़खड़ाने के कारण सुन्दर रूप में बहती हुई भंवर–रूपी नाभि को दिखलाती हुई निर्विन्ध्या (नदी) के मार्ग के पहुंच कर जल से पूर्ण मध्य भाग वाले हो जाना क्योंकि स्त्रियों का प्रिय के प्रति हाव–भाव ही प्रथम प्रार्थना वचन होता है।

वेणीभूतप्रतनुसलिला सावतीतस्य सिन्धुः

पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः।

सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यंजयन्ती

कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः।।30।।

अन्वयः–सुभग, वेणीभूतप्रतनुसलिला तटरुहतरुभर्शिभिःजीर्णपर्णैः, पाण्डुच्छाया अतीतस्य ते सौभाग्यं विरहावस्था व्यजन्ती असौ सिन्धुः येन विधिना कार्श्यं त्यजति, स त्वया एव उपपाद्य।

अनुवाद –हे सौभाग्यशाली, वेणी के समान बने हुए क्षीण जल वाली किनारे पर उगे हुए वृक्षों से गिरने वाले पुराने पत्तों से पीली क्रान्ति वाली, चिरकाल से गये हुए तेरे सौभाग्य को (अपनी) विरह की दशा से प्रकट करने वाली यह (निर्विन्ध्या) नदी जिस उपाय से क्षीणता को छोड़ सके, वह उपाय तुम्हें ही करना है।

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्

पूर्वोद्दिष्टामुपसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानाम्

शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमखण्डमेकम्।।31।।

अन्वयः–उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य पूर्वोद्दिष्टां श्रीविशालां विशालाम्पुरीम् उपसर(या)सूचरितफले स्वल्पीभूते गां गातानाम् स्वर्गिणा शेषः पुण्यैः हृतम् दिवः एकम् कान्तिमत् खण्डम् इव (अस्ति)।

अनुवाद –अवन्ति नाम के जनपद में पहुँचकर जहाँ गांवों के बूढे लोग उदयन की कथाओं के जानकार हैं, पहले बतलाई गई, सम्पत्ति से विशाल, विशाला (उज्जयिनी) नाम की नगरी के पास जाना, (जो नगरी) मानो, पुण्य कर्मों के फल के कम हो जाने पर पृथ्वी पर आए हुए देवों के बचे हुए पुण्यों द्वारा लाया हुआ स्वर्ग का एक उज्जवल टुकड़ा है।

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानाम्

प्रत्यूषेषू स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूलः

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।।32।।

अन्वयः –यत्र प्रत्येषु सारसानाम् पटु मदकलं कूजितं दीर्घीकुर्वन् स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः अंगानुकूलः शिप्रावातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतमः इव स्त्रीणां सुरतग्लानि हरति।

अनुवाद –जहाँ प्रभातकाल में सरसों के तीव्र (और) मद से अव्यक्त मधुर कूंजन को अधिक बढ़ाता हुआ, खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित, अंगों को सुखकारी, शिप्रा नदी का पवन रति–याचना में मीठे वचन बोलने वाले प्रियतम के समान, स्त्रियों की रति– क्रीड़ा की थकान को दूर कर देता है।

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शंखशुक्तीः

शष्पश्यामान् मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।

दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रमाणां च भंगान्

संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः।।33।।

अन्वयः – यस्यां कोटिशः विपणिरचितान् तरलगुटिकान् तारान् हारान् शंखशुक्तीः शष्पश्यामान् उन्मयूखप्ररोहान् मरकतमणीन, विद्रुमाणां भंगान् च दृष्ट्वा सलिनिधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते।

अनुवाद –जिस (उज्जयिनी) में करोड़ों की संख्या में बाजारों में फैलाए गए, बहुमूल्य मध्य–मणि वाले सच्चे हारों को, शंख और सीपियों को, तृण के समान हरे और ऊपर की ओर उठती हुई किरणों के अंकुरों वाले पन्नों को और मूंगों के टुकड़ों को देखकर, समुद्र केवल जल–मात्र बचे हुए दीखते हैं।

प्रद्योतस्यं प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्वे

हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।

अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा–

दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः।।34।।

अन्वयः–अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं जह्वे, अत्र यस्य एव राज्ञः हैमं तालद्रुमवनम्, अभृत, अत्र किल नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः, इति यत्र अभिज्ञः आगन्तून्–बन्धून् रमयति।

अनुवाद –यहां वत्स देश के राजा (उद्यन) ने प्रद्योत की प्रिय पुत्री (वासवदता) का अपहरण किया था, यह उस ही राजा का सोने का ताल के वृक्षों का वन था, (और) सुना जाता है, यहां नलगिरि (नाम के हाथी) ने मद के कारण खम्भा उखाड़कर उद्धत होकर भ्रमण किया था, इस प्रकार जहां (उज्जयिनी में) (कथाओं के) जानकार लोग (दूर देशों से) आए हुए सम्बन्धियों का मनोविनोद करते हैं।

जलोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै

र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा

लक्ष्मीं पश्यन् ललितवनितापादरागाकिंतेषु।।35।।

अन्वयः –जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपतिवपुः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरगांकितेषु अस्याहर्म्येषु लक्ष्मीं, पश्यन् अध्वखेदं नयेथाः।

अनुवाद –जालियों में से निकलते हुए केशों के प्रसाधन में प्रयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (के धूम) से पुष्ट शरीर वाले (और) मित्र के स्नेह के कारण भवनों के मयूरों द्वारा नृत्य का उपहार दिए गए (तुम) पुष्पों से सुगन्धित (और) सुन्दर नारियों के चरणों के लाक्षारस से चिहिंत इस (उज्जयिनी) के महलों में शोभा को देखते हुए मार्ग की थाकान को दूर करना।

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणाः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैमरुद्भिः।।36।।

अन्वयः – भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यं धाम, यायाः (यत्) कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीड़ानिरतयुवतिस्नानतिक्तेः गन्धवत्याः मरुभ्रि धूतोद्यानम् (अस्ति)

अनुवाद –(यह हमारे) स्वामी के कण्ठ की कान्ति के समान कान्ति वाला है, इस कारण (शिव के) सेवकों द्वारा आदरपूर्वक देखा जाता हुआ (तू) तीनों लोकों के स्वामी चण्डीश्वर (शिव के) पवित्र स्थान (महाकाल मन्दिर) में जाना, (जो स्थान) कमलों के पराग से सुगन्धित (तथा) जल–क्रीड़ में लगी हुई युवतियों की स्नान–सामग्री से तीव्र गन्ध वाले गन्धवती के वायुओं से हिलाए गए बगीचों वाला है।

अप्यन्यस्मिंजलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।37।।

अन्वयः – जलधर, अन्यस्मिन् काले महाकालम् आसाद्य अपि ते स्थातव्यं यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति। शूलिनः श्लाघनीयां सन्ध्याबलिपटहतां कुर्वन् आमन्द्राणां गर्जितानाम् अविकलं फलं लप्स्यसे।

अनुवाद – हे मेघ, अन्य समय में महाकाल पर पहुंच कर भी तुम्हें (तब तक) ठहर जाना चाहिये जब तक कि सूर्य दृष्टि से ओझल हो, शूलधारी शिव की सन्ध्या की पूजा में नगाड़े का प्रशंसनीय काम करते हुए (अपने) गम्भीर गर्जनों का पूर्ण फल प्राप्त कर लेगें।

पादन्यासैः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू–
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान्।।38।।

अन्वयः – तत्र पादन्यासैः क्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचितवलिभिः चामरैः क्लान्तहताःवेश्याः त्वत्तः नखपदसुखान् वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते।

अनुवाद – यहाँ सन्ध्या काल में पैरों के रखने से बजी हुई करधनियों वाली, विलासपूर्वक डुलाये जाते हुए और मणियों की कान्तियों से व्याप्त हत्थों वाले चंवरों से थके हुए हाथों वाली वेश्यायें तुमसे नख–चिह्नों को सुख देने वाली वर्षा की पहली बूंदों को पाकर तुम पर भौंरों की पंक्ति के समान लम्बे कटाक्ष छोड़ेंगी।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः

सांध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।

नृत्तारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां

शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।।39।।

अन्वयः – पश्चात् उच्चैः भुजतरुवनं मण्डलेन अभिलीन नः प्रतिजवजपापुष्परक्तं सान्ध्यं तेजः दधानः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिः (त्पम्) नृत्तारम्भे पशपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छां हर।

अनुवाद – बाद में, ऊँचे भुजाओं रूपी वृक्षों के वन को मण्डलाकार रूप में व्याप्त करके ताजे जपा के पुष्प के समान लाल, सन्ध्याकालीन कान्ति को धारण करता हुआ (और) पार्वती द्वारा भय शान्त हुए (अतः) स्थिर नयनों के साथ देखी जाती हुई भक्ति वाला (तू) (ताण्डव) नृत्य के आरम्भ में शिव की गीले हस्ति–चर्म की इच्छा को दूर करना।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषिता तत्र नक्तं

रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।

सौदामन्या कनकनिकषस्निगधया दर्शयोर्वीं

तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ताः।।40।।

अन्वयः – तत्र नक्तं रमणवसर्ति गच्छन्तीनां योषितां सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामन्या उर्वीं दर्शय, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः च मा भूः, ताः विक्लवाः।

अनुवाद – वहां (विशाला में) रात्रि में प्रेमियों के घर जाती हुई स्त्रियों को घने अन्धकार द्वारा रोक लिये गये दृष्टि प्रसार वाले राजमार्ग में कसौटी पर खींची गई स्वर्ण की रेखा के समान उज्जवल विद्युत से भूमि (अर्थात् मार्ग भूमि) दिखलाना और जल वर्षा तथा गर्जन द्वारा वाचाल न होना, (क्योंकि) वे (स्त्रियां) भीरु (होती है)।

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां

नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भगवान् वाहयेदध्वशेषं

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।।41।।

अन्वयः – चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायां कस्यांचिद् भवनलभौ रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे भवान् पुनः अपि अध्वशेषं वाहयेत् सुहृदाम् अभ्युतेपार्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु।

अनुवाद – देर तक चमकते रहने के कारण थकी हुई विद्युत रूपी स्त्री वाले आप, सोये हुए कबूतरों वाली किसी घर की अटारी पर वह रात बिता कर सूर्य के दीखने पर फिर शेष मार्ग को तय करें, क्योंकि मित्र का काम करना स्वीकार कर लेने वाले (लोग) कभी ढीले नहीं पड़ते हैं।

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां

शान्ति नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः।

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः।।42।।

अन्वयः – तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानां योषितां नयनसलिलम् शान्ति नेयम् अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज। सः अपि नलिन्याः कमलवदनाद् प्रालेयास्त्रं हर्तुं प्रत्यावृत्तः कररुधि त्वयि अनल्यपाभ्यसूयः स्यात्।

अनुवाद – उस समय प्रेमियों को खण्डिता नायिकाओं के आँसू शान्त करने होते हैं, इसलिये (तू) सूर्य का रास्ता जल्दी छोड़ देना। वह भी कमलिनी के कमल रूपी मुख के ओस रूपी आंसू पोंछने के लिये लौटकर आया हुआ किरण को रोकने वाले तुझ पर अत्याधिक क्रुद्ध होगा।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने

छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।

तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या–

न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।।43।।

अन्वयः – गम्भीरायाः सरितः प्रसन्ने चेतसि इव पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेश लप्स्यते, तस्मात् त्वम् अस्या, कुमुदविशदानि चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि धैर्यात् मोघीकर्तुं न अर्हसि।

अनुवाद – गम्भीरा नदी के प्रसन्न हृदय के समान (निर्मल) जल में स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा छाया शरीर भी प्रवेश पा लेगा, इसलिये तुम्हें इस (गम्भीरा नदी) की कुमुद जैसी धवल, चंचल मछलियों की उछाल रूपी चितवनों को (अपनी) धीरता के कारण निष्फल नहीं करना चाहिये।

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं

हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।

प्रस्थानं ते कथमपि सखे ! लम्बमानस्य भावि

ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहतुं समर्थः।।44।।

अन्वयः – सखे, प्राप्तवानीरशाखं किंचित्करधृतम् इव, मुक्तरोधोनितम्बं नीलं तस्याः सलिलवसनं हृतवा लम्बामानस्य ते प्रस्थानं कथमपि भावि। ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनां विहातुं समर्थः।

अनुवाद – हे मित्र, बेंत की शाखा तक पहुंचे हुए, (अतः) मानो, कुछ हाथ में पकड़े हुए, तट–रूपी नितम्ब को छोटे हुए, नीले, उस (गम्भीरा) के जल रूपी वस्त्र का हरण करके झुके हुए तेरा प्रयाण कठिनाई से ही होगा। स्वाद जान लेने वाला कौन (पुरुष) उघड़ी जांघ वाली (कामिनी) को छोड़ सकता है।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्कस्म्यः

स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।

नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते

शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।45।।

अन्वयः – त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः दन्तिभिः स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं पीयमानः काननोदुम्बराणां परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्व गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति।

अनुवाद – तेरे बरसने से फूली हुई पृथ्वी की गन्ध के संसर्ग से सुन्दर हाथियों द्वारा नाक के छिद्रों में शब्द के साथ सुन्दर रूप में पीया जाता हुआ, वन के गूलरों को पकाने वाला, शीतल वायु देवगिरि के समीप जाने के इच्छुक तेरे नीचे बहेगा।

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा

पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगंगाजलार्द्रैः।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूनां

मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः।।46।।

अन्वयः – पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् व्योमगंगजलार्द्रैः पुष्पासारैः तत्र नियतवसतिं स्कन्दं स्नपयतु, तत् हि वासवीनां चमूनां रक्षाहेतोः नवशशिभूता हुतवहमुखे संभृतम् अत्यादित्यं तेजः।

अनुवाद – अपने आपको पुष्पों का मेघ बनाये आप आकाशगंगा के जलों से गीली पुष्पों की धारा–वृष्टियों से वहाँ (देवगिरि में) सदैव रहने वाले स्कन्द को स्नान करायें, क्योंकि वह इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिये नवीन चन्द्रमा धारण करने वाले (शिव) द्वारा अग्नि के मुख में स्थापित किया हुआ, सूर्य का भी अतिक्रमण करने वाला, तेज है।

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी

पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्राप्ति कर्णे करोति।

धौतापांगं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं

पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।।47।।

अन्वयः – यस्य ज्योतिर्लेखावलयि गलितं बर्हं भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति, हरशशिरुचा पावकेस्तं धौतापांगं तं मयूरं पश्चात् अद्रिग्रहणगुरुर्भिगर्जितैः नर्तयेथाः।

अनुवाद – जिस (मयूर) के कान्ति की रेखाओं के मण्डल वाले, गिरे हुए पंख को पार्वती पुत्र के स्नेह से कमल की पंखुड़ी को प्राप्त कराते हुए कान में लगाती है, शिव के चन्द्रमा की कान्ति से धुले हुए नेत्र–प्रान्तों वाले उस मयूर को बाद में पर्वत में प्रवेश से बढ़े हुए गर्जनों से नचाना।

आराध्यैनं शरवणभरवं देवमुल्लंघिताध्वा

सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।

व्यालम्बेथा सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।।48।।

अन्वयः – एनं शरवणं देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकरणभयात् मुक्तमार्गः उल्लंघिताध्वा सुरभितनयालम्भजां भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्ति मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः।

अनुवाद – इस सरकण्डों में उत्पन्न (स्कन्द) देव की आराधना करके, वीणाधारी सिद्धों के युगलों द्वारा पानी की बूंदों के डर में छोड़े गये मार्ग वाले (तुम) (कुछ) रास्ता पार करके सुरभि की पुत्रियों (गायों) की बलि से उत्पन्न पृथ्वी पर नदी के रूप में परिवर्तित हुई, रन्तिदेव की कीर्ति का आदर करते हुए झुक जाए।

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ंगिणो वर्णचौरे

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टि–

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।।49।।

अन्वयः – गगनतयः शार्ंगिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते पृथुम् अपि दूरभावत् तनुं तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् एकं स्थूलमध्येन्द्रनीलं भुवः मुक्तागुणम् इव नूनं दृष्टी आवर्ज्य प्रेक्षिष्यन्ते।

अनुवाद – आकाश–चारी (देव) कृष्ण की कान्ति के चोर तेरे (चर्मण्वती का) जल लेने के लिये झुक जाने पर विशाल होते हुए भी दूर होने के कारण क्षीण उस नदी के प्रवाह को, मानो, एक (लड़ी वाले), मध्य में मोटी इन्द्रनील मणि वाले, पृथ्वी के मोतियों के हार को, सचमुच दृष्टि जमाकर देखेंगे।

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम्।

कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं

पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्।।50।।

अन्वयः – ताम् उत्तीर्य आत्मबिम्बं परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरिविलसत्कृष्ण– सारप्रभाणां कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषां दशपुरवधूनेत्र कौतूहलानां आत्मबिम्बं पात्रीकुर्वन् व्रज।

अनुवाद – उस (चर्मचण्वती) को पार करके अपने स्वरूप को दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों के कौतूहल का पात्र बनाते हुये जाना, जिन (नेत्र–कौतूहलों) में भैं–रूपी लताओं का विलास परिचित है, जिनमें पलकों को ऊपर की ओर उठाने के कारण काली– श्वेत कान्तियां ऊपर फैल रहीं है और जो कुन्द–पुष्प के हिलने–डुलने का अनुसरण करने वाले भौंरो की शोभा को चुराने वाले हैं।

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः

क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।

राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा

धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि।।51।।

अन्वयः – अथ ब्रह्मावर्तं जनपदं छायया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनं तत् कौरवं क्षेत्रं भजेथाः। तत्र गाण्डीवधन्वा शितशरशतैः राजन्यानां मुखानि, त्वम् धारापातैः कमलानि इव अभ्यवर्षत्।

अनुवाद – तदनन्तर ब्रह्मावर्त नामक जनपद का (अपनी) छाया से अवगाहन करते हुए (तुम) क्षत्रियों के युद्ध से सूचक कुरुक्षेत्र का सेवन करना, जहां गाण्डीव–धनुर्धारी (अर्जुन) ने तीक्ष्ण बाणों से क्षत्रियों के मुखों पर, धारावृष्टि से कमलों पर तुम्हारे समान, वर्षा की थी।

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनांकां

बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लांगली याः सिषेवे।

कृत्वा तासामधिगममपां सौम्य सारस्वतीना

मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः।।52।।

अन्वयः – बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लांगली अभिमतरसां रेवतीलोचनांकां हालां हित्वा याः सिषेवे, तासां सारस्वतीनाम् अपाम् अधिगमं कृत्वा, हे सौम्य, त्वमपि अन्तः शुद्धः भविता, वर्णमात्रेण कृष्णः (भविता)।

अनुवाद – बन्धुओं के स्नेह के कारण युद्ध से परांमुख हलधर (बलराम) ने अभीष्ट स्वाद वाली (और) रेवती के नेत्रों के चिह्न (प्रतिबिम्ब) वाली सुरा को छोड़कर जिनका सेवन किया था, सरस्वती नदी के उन जलों को पीकर है ! सौम्य, तुम भी हृदय से शुद्ध को जाओगे, केवल वर्ण से ही श्याम (रहोगे)।

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा

जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्।

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः

शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।53।।

अन्वयः – तस्मात् अनुकनखलं शैलराजावतीर्णां सगतनयस्वर्गसोपानपंक्ति जह्नोः कन्याम् गच्छेः, गौरीवक्त्रभ्रुकूटिरचनां फेनैः विहस्य इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता या शम्भोः केशवग्रहणम् अकरोत्।

अनुवाद – वहां (कुरुक्षेत्र) से कनखल के समीप पर्वतराज (हिमालय) से उतरी हुई, सगर के पुत्रों के लिये की सीढ़ी (बनी हुई), जह्नु की पुत्री (गंगा) पर जाना, पार्वती के मुख पर भ्रूभंग का मानो झागों से उपहास करके चन्द्रमा में लगे हुए तरंग रूपी हाथी वाली जिस (गंगा) ने शिव के केशों को पकड़ा था।

तस्याः पातुं सुरगज इव व्याम्नि पश्चार्धलम्बी,
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छायया ऽसौ,
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा।।54।।

अन्वयः – सुरगज इव योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वं चेत् तस्याः अच्छस्फटिकविशदम् अम्भः तिर्यक् पातुं तर्कयेः, असौ सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया अस्थनोपगत– यमुनासंगमा इव अभिरामा स्यात्।

अनुवाद – देवों के हाथ के समान आकाश में पिछले आधे भाग (के सहारे) से लटके हुए तु यदि उस (गंगा) के स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल जल को टेढ़ा होकर पीने का विचार करोगे (तो) वह (गंगा) परन्तु धारा में साथ–साथ चलती हुई आपकी परछाई से, बिना (संगम) स्थान भी यमुना के साथ संगम को प्राप्त हुई सी सुन्दर हो जायेगी।

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृंगे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकोपमेयाम्।।55।।

अन्वयः – आसीनानां मृगाणां नाभिगन्धैः सुरिभितशिलम् तस्या एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलं प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य शृंगे निषण्णः शुभ्रविनयन् वृषोत्खातपंकोपमेयां शोभां वक्ष्यसि।

अनुवाद – (वहां) बैठे हुए हरिणों की कस्तूरी की गन्ध से सुवासित शिलाओं वाले, उस (गंगा) के उत्पत्ति स्थान, बर्फ से धवल पर्वत पर पहुंच कर मार्ग की थकान को दूर करने वाले उसके शिखर पर स्थित (तुम) त्रिनेत्र शिव के धवल वृषभ (नन्दी) द्वारा उछाली गयी कीचड़ से तुलना की जाने योग्य शोभा को धारण करोगे।

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्।।56।।

अन्वयः – वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीबालभारः दवाग्निः तं बाधेत चेत् नं वारिधारासहस्रैः अलं शमयितुम् अर्हसि। उत्तमानां सम्पदः आपन्नार्ति– प्रशमनफलाः हि।

अनुवाद – वायु के चलने पर देवदारु वृक्षों के तनों की रगड़ से उत्पन्न (और) ज्वालाओं से चमरी हिरन के बालों के समूह को नष्ट कर देने वाली वन की आग यदि उस (हिमालय) को पीड़ित करे (तो) तुम्हें इस (आग) को जल की सहस्रों धाराओं से पूरी तरह शान्त करना चाहिये। श्रेष्ठ (लोगों) की सम्पत्तियों का फल पीड़ितों के दुःख का निवारण ही है।

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वागभंगाय तस्मिन्

मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लंघयेयुर्भवन्तम्।

तानकुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नः।।57।।

अन्वयः – तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानं भवन्तं सपदि स्वांभंगाय लंघयेयुः तान् तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् कुर्वीथाः। निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदं न स्युः।

अनुवाद – उस (हिमालय पर्वत) में क्रोध के कारण उड़ने में वेग वाले जो शरभ रास्ता छोड़ देने वाले आपको तुरन्त अपने अंगों को नष्ट करने के लिए लांघें, उन्हें भंयकर ओलों की वृष्टि गिराकर तितर–बितर कर देना अथवा व्यर्थ काम करने वाले कौन तिरस्कार के विषय नहीं होते हैं ?

तत्र व्यक्तं दृषति चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः

शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।

यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः

कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।58।।

अन्वयः – तत्र दृषदि व्यक्तं सिद्धै शश्वत् उपचितबलिम् अर्धेन्दुमौलेः चरणन्यासं भक्तिनम्रः (सन्) परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्व स्थिरगण –पदप्राप्तये, कलिपष्यन्ते।

अनुवाद – वहां (हिमालय में) शिला में प्रकट हुए, सिद्ध नामक देवों द्वारा हमेशा उपहार भेंट किये गये, शिव के पद–चिन्हों की भक्ति से झुककर प्रदक्षिणा करना, जिस (पद–चिन्ह) को देख लेने पर नष्ट हुए पाप वाले श्रद्धालु (जन) शरीर की समाप्ति के पश्चात् स्थायी सेवक–पद को प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं।

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः

संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्

संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।।59।।

अन्वयः – अनिलैः पूर्यमणाः कीचकाः मधुरं संरक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते, कन्दरेषु ते निर्ह्रादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् चेत् तत्र पशुपतेः संगीतार्थः ननु समग्रो भावी।

अनुवाद – वायु से भरे जाते हुए बांस मीठा–मीठा शब्द करते हैं, प्रेम से भरी किन्नर स्त्रियां त्रिपुर–विजय का गान करती है, यदि गुफाओं में तुम्हारा गर्जन नगाड़े के शब्द के समान हो जाये (तो) वहां शिव के संगीत की सामग्री निश्चय ही पूर्ण हो जायेगी।

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौंचरन्ध्रम्।

तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी

श्यामः पादो बलिनियनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः।।60।।

अन्वयः – प्रालेयाद्रेः उपतटं तान् तान् विशेषन् अतिक्रम्य, यत् हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म क्रौंचरन्ध्रम् (अस्ति), तेन बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी (त्वम्) उदीचीं दिशम् अनुसरेः।।

अनुवाद – हिमालय पर्वत के तट के समीप उन द्रष्टव्य वस्तुओं को पार करके जो हलों का मार्ग (तथा) भृगु–कुल के स्वामी (परशुराम की कीर्ति का) पथ क्रौंच पर्वत का छिद्र है उसमें बलि नामक असुर के दमन के लिए उद्यत विष्णु के काले चरण के समान, तिरछे आकार से शोभित हुये (तुम) उत्तर दिशा को जाना।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः

कैलासस्य त्रिदशवनितादार्पणस्यातिथिः स्याः।

शृंगोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यबकास्याट्टहासः।।61।।

अन्वयः – ऊर्ध्वं च गत्वा दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः; कुमुदविशदैः शृंगोच्छ्रायैः खं विवत्य स्थितः यः प्रतिदिनं राशीभूतं त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव।

अनुवाद – और आगे जाकर (तुम) दस मुख वाले (रावण) की भुजाओं द्वारा शिखरों के जोड़ ढीले किये गये, देवों की स्त्रियों के दर्पण, कैलास के अतिथि होना, कुमुदों के समान श्वेत शिखरों की ऊँचाइयों से आकाश को व्याप्त करके खड़ा हुआ जो (कैलास), मानो, प्रतिदिन इक्ट्ठा हुआ शिव का विकट अट्टहास है।

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नांजनाभे

सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य

शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीं

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।।62।।

अन्वयः – स्निग्धभिन्नंजनाभे त्वयि तटगते (सति) सद्यःकृतद्विरददशन्छेदगौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि अंसन्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमित नयनप्रेक्षणीयां भवित्रीं शोभाम् उत्पश्यामि।

अनुवाद – चिकने पिसे हुए काजल की कान्ति वाले तेरे तट पर पहुंचने पर तुरन्त काटे हुए हाथी दांत के टुकड़े के समान धवल उस पर्वत को नीले वस्त्र को कन्धे पर रखा होने पर हल–धर (बलराम) की जैसी, निश्चल नेत्रों से देखी जाने योग्य होने वाली शोभा की कल्पना करता हूँ।

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता

क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी।

भंगीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः

सौपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाऽग्रयायी।।63।।

अन्वयः – तस्मिन् क्रीडाशैले च भुजगवलयं हित्वा शम्भुना दत्तहस्ता गौरी पादचारेण विचरेत् यदि, अग्रयायी स्तम्भितान्तर्जलौघः भंगीभक्त्या विरचितवपुः मणितटारोहणाय सोपानत्वां कुरु।

अनुवाद – और यदि क्रीड़ापर्वत (कैलास) में सर्प–रूपी कड़े को त्याग कर शम्भु द्वारा दिए गए हाथ वाली पार्वती यदि पैदल विचरण कर रही हो, (तो) आगे जाकर और (अपने) अन्दर जल के प्रवाह को ठोस बनाये हुए होकर पैड़ियों के आकार में बनाये हुए शरीर वाले (तुम) मणियों के तट पर चढ़ने के लिये सीढ़ी का काम करना।

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं

नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।

ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्यात्

क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः।।64।।

अन्वयः – तत्र अवश्यं सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं त्वां यन्त्रधारागृहत्वं नेष्यन्ति। सखे, यदि धर्मलब्धस्य तव ताभ्यः मोक्षः न स्यात्, क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः।

अनुवाद – वहाँ (कैलास में) निश्चय ही देवताओं की स्त्रियां (उनके) कड़ों (के किनारों) की टक्कर से पानी बरसाते हुये तुमकों फव्वारा बना देगी। हे मित्र, यदि गर्मी में प्राप्त हुये तुम्हारा उनसे छुटकारा न हो (तो) क्रीड़ा में चंचल उन (देवांगनाओं) को (अपने) कर्ण–कटु गर्जनों से डरा देना।

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः

कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।

धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै–

र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्।।65।।

अन्वयः – जलद, हेमाम्भोदप्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः; ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीति कुर्वम्, कल्प्रद मकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः धुन्वन् नानाचेष्टैः ललितैः तं नगेन्द्रं कामं निर्विशेः।

अनुवाद – हे मेघ, स्वर्ण–कमलों को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को लेते हुए, ऐरावत को क्षणभर के लिये मुंह पर वस्त्र का आनन्द देते हुए (और) कल्प वृक्ष के नूतन पल्लवों को, मानो, सूक्ष्म वस्त्रों के समान हवाओं से हिलाते हुए (तुम) अनेक प्रकार की क्रियाओं वाले विलासों से उस पर्वत–राज का यथेच्छ उपभोग करना।

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगदुकूलां

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलंका ज्ञास्यसे कामचारिन्।

या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना

मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।।66।।

अन्वयः – कामचारिन्, प्रणयिनः इव तस्य उत्संगे स्रस्तगंगदुकूलाम् अलंका दृष्ट्वा त्वं पुनः न ज्ञास्यसे (इति) न, उच्चैर्विमाना या वः काल सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दं कामिनी मुक्ताजालग्रथितम् अलकम् इव वहति।

अनुवाद – हे इच्छानुसार विचरण करने वाले (मेघ), प्रेमी के समान उस (कैलास) की गोद खिसके हुए गंगा–रूपी धवल वस्त्र वाली अलका (पुरी) को देखकर तुम न जान सकोगे, (यह बात) नहीं (है), ऊँचे–ऊँचे सात मंजिले भवनों वाली जो (अलका) तुम (मेघों) की ऋतु में जल बरसाने वाले मेघ–समूह को, स्त्री मोतियों के गुच्छों से गूंथे हुए केशों को जैसे, धारण करती है।

इति पूर्वमेघः

1.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. 'मेघदूत' किसकी रचना है ?
2. यक्ष को किसने शाप दिया ?

3. पूर्वमेघ में कितने श्लोक हैं ?

4. मेघदूत में प्रयुक्त छन्द का क्या नाम है ?

5. यक्ष ने किस मास में मेघ को देखा ?

1.5 सारांश

पूर्वमेघ – अपने किसी कर्त्तव्य में प्रमाद के कारण स्वामी के वर्षावधिक शाप से अभिशप्त कोई यक्ष अपनी महिमा को खोकर रामगिरि के आश्रमों में निर्वासन के दिन व्यतीत कर रहा था। लगभग आठ मास का समय बीत चुका था। प्रिया के वियोग के सन्ताप ने उसे कृशकाय कर दिया था और उसका समय बड़ी कठिनाई से बीत रहा था कि ऋतु–क्रम के आषाढ के प्रथम दिन उसने सामने पर्वत के शिखर का आलिंगन किये मेघ को देखा।

वियोगियों को उत्तप्त कर देने वाले मेघ को सामने देखकर उसका हृदय प्राण– प्रिया की रक्षा के निमित्त दुःखी हो उठा और अचेतन मेघ के द्वारा ही अपना प्रेम– सिक्त सन्देश भेजकर प्रिया को आश्वस्त करना चाहा। कामी को भला चेतन–अचेतन का विवेक कहां ? सन्देशवाहक की कुलीनता, महत्ता, दया–प्रवणता तथा गन्तव्य स्थान की रमणीयता एवं पवित्रता आदि के उल्लेख और शुभ–शकुन की उपस्थिति के संकेत द्वारा उसे तुरन्त प्रस्थान कर देने के लिये अभिमुख करके यक्ष ने मेघ को अलकापुरी का मार्ग बतलाना प्रारम्भ किया –

'तुम्हें रामगिरि से विदा लेकर उत्तर दिशा की ओर जाना है, मार्ग में वर्षा ऋतु में मानस के लिये उत्सुक राजहंस कैलास तक तुम्हारे सह–यात्री होंगे और मार्ग में जनपद की भोली बधुएं तुम्हें प्यासी नेत्रों से देखेगी, क्योंकि कृषि सामयिक वर्षा पर ही तो निर्भर है। आम्रकूट पर्वत तुम्हें अपने सिर पर धारण करेगा; जिससे पर्वत की शोभा अद्भुत हो जायेगी। वह भू–कामिनी के उन्नत स्तन के समान प्रतीत होगा।'

इसके बाद कुछ मार्ग पार करने पर तुम विन्ध्याचल के चरणों में बल खाती रेवा (नर्मदा) को देखोगे और तुम उसके स्वादु जल का पान करके पूर्ण हो जाओगे जिससे वायु तुम्हें उड़ा न सकेगा। वहां विचरण करने वाले सिद्ध गर्जन से डरी प्रियाओं का आलिंगन प्राप्त करके तुम्हें आदर से देखेंगे। मार्ग में अनेक पर्वत पड़ेंगे, जो कुटज–पुष्पों से सुगन्धित होंगे और तुम्हें लुभा कर विलम्ब कर देंगे; परन्तु तुम्हें किसी प्रकार जल्दी से बढ़ते ही जाना चाहिये।

इसके उपरान्त तुम दशपुर जनपद में पहुंच जाओगे और उससे आगे ब्रह्मावर्त जनपद आ जायेगा, जिसमें प्रसिद्ध कुरूक्षेत्र तीर्थ है। वहां सरस्वती के पवित्र जल का, जिसके लिये बलराम ने अपनी प्रिय मदिरा का त्याग कर दिया था, पार करके तुम भी पवित्र हृदय होकर केवल वर्ण से ही काले रह जाओगे। वहां से चलकर तुम्हें कनखल के समीप हिमालय से उतरती हुई गंगा मिलेगी। उसका जल लेने के लिये जब तुम तिरछे होकर झुकोगे तो उसके जल में तुम्हारी काली परछाई पड़ने से उसका बिना प्रयाग ही यमुना से संगम हो जायेगा। तदुपरान्त गंगा के पिता हिमालय पर पहुंच कर उसके हिमाच्छति धवल शिखिर के ऊपर स्थित तुम्हारी शोभा शिव के धवल वाहन द्वारा ऊपर उछाले हुए पंक के तुल्य हो जायेगी। वहां यदि वायु चलने पर सरल वृक्षों के तनों में आग लग जाये तो वृष्टि द्वारा उसे शान्त कर देना, क्योंकि उत्तम लोगों की सम्पत्ति पीड़ितों के कष्ट निवारण के लिये ही होती है।

'हिमालय में एक शिला में प्रकट चन्द्रमौलि शिव के चरण न्यास की भक्तिपूर्वक परिक्रमा करना। उसके दर्शन से श्रद्धालु जन शरीर पूरा होने पर शाश्वत गण–पद प्राप्त कर लेते हैं। वहाँ कीचक जाति के वेणु बजाने और किन्नरियों के मधुर आलाप करने पर यदि तुम मुरज सृदश नाद की गूंज कर दो तो पशुपति का संगीत पूर्ण हो जायेगा।

हिमालय की अनेक विशेषताओं को देखते हुए तुम हंसों के आने–जाने के मार्ग क्रोंच–रन्ध्र पर पहुंचकर उसमें तिरछे होकर प्रवेश करके उत्तर दिशा की ओर जाना। तब तुम कैलास पर्वत पर पहुंच जाओगे, जहां देवाधिदेव

शम्भु निवास करते हैं। वहां यदि पदैल भ्रमण करती हुई पार्वती मणितट पर चढ़ना चाहे तो अपने जल को जमाकर सोपान के आकार का बना लेना। वहां गर्मी से संतप्त सुरयुवतियां यदि तुम्हारा पिण्ड न छोड़े तो उन्हें श्रवण–कटु गर्जनों से डरा देना। कैलास पर्वत में मानस का जल पीकर, ऐरावत के मुख पर आवरण बनाकर तथा कल्पद्रुम के किसलयों को हिलाकर नाना प्रकार की सुभाग चेष्टाओं द्वारा उस नगेन्द्र का उपभोग करना। तुम उसकी गोद में स्थित ऊँचे–ऊँचे महलों वाली अलकापुरी को अवश्य ही पहचान लोगे।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **औत्सुक्यात्** – उत्कण्ठा के कारण
- **कामार्ताः** – कामपीडित
- **पथिकवनिताः** – (परदेश गए हुए – प्रवासी) पथिकों की पत्नियाँ
- **नयनसुभगं भवन्तम्** – नेत्रों को सुन्दर लगने वाले आपको
- **रघुपतिपदैः** – राम के चरणों (चरण चिह्नों) के द्वारा
- **वनगजमदैः** – वन के हाथियों के मद से
- **कालक्षेयम्** – समय का विलम्भ
- **प्रणयवचनम्** – प्रेम की बात
- **नाभिगन्धैः** – कस्तूरी की सुगन्ध से
- **हलभृतः** – बलराम की

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. कालिदास की रचना है।
2. कुबेर ने
3. 66
4. मन्दाक्रान्ता
5. आषाढ मास में

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मेघदूत की काव्यगतविशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. पूर्वमेघ का सार लिखिए।
3. मेघदूत में वर्णित मेघ–मार्ग का विश्लेषण कीजिए।
4. मेघदूत के अनुसार यक्ष का चरित्र–चित्रण कीजिए।
5. कालिदास का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व लिखिए।

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. मेघदूतम् – कालिदास, व्याख्याकार – डॉ० दयाशंकर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2015 ई०
2. मेघदूतम् – कालिदास, सम्पादक – पं० ब्रह्मशंकरशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण वि०सं० 2059
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2003 ई०
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2016 ई०
5. संस्कृत–हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2005 ई०
6. मेघदूतम् – कालिदास, सम्पादक – डॉ० संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2003 ई०

इकाई – 2

मेघदूतम् – कालिदास (उत्तरमेघ)

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 मेघदूतम् (उत्तरमेघ)

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

2.5 सारांश

2.6 मुख्य शब्दावली

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में हम महाकवि कालिदास विरचित खण्डकाव्य मेघूदत के उत्तर मेघ का अध्ययन करेंगे। मेघदूत की कथावस्तु कवि–कल्पित है। कथावस्तु केवल नाम मात्र के लिये है। कवि ने विरही यक्ष के मुख से अलकापुरी के मार्ग तथा अलका के वर्णन द्वारा प्रकृति–चित्रण का सुन्दर और सरस अवसर खोज लिया है। पूर्वमेघ में मार्ग का वर्णन है और उत्तरमेघ में अलका की समृद्धि तथा यक्षिणी के सौन्दर्य तथा विरह दशा का। अन्तिम कुछ पद्यों में यक्ष का सन्देश बतलाया है।

2.2 इकाई के उद्देश्य

- कालिदास का काव्यवैशिष्टय प्रतिपादित कर पाएंगे;
- अलकापुरी के प्राकृतिक सौंदर्य के विषय में विस्तार से वर्णन कर सकेंगे;
- उत्तरमेघ की कथावस्तु का विश्लेषण कर पाएंगे;
- मेघदूत में वर्णित प्रकृति–वर्णन की समीक्षा कर सकेंगे;
- 'मेघदूत में प्रेम का चित्रण' विषय के विभिन्न पक्षों से परिचित हो सकेंगे।

2.3 मेघदूतम् (उत्तरमेघ)

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं तत्र तैस्तैर्विशेषैः।।1।।

अन्वयः – यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीताय प्रहमुरजाः मणिमयभुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रसादाः विद्युत्वतं सेन्द्रचापं स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्तस्तोयं तुंगं त्वां तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम् (सन्ति)।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में सुन्दर स्त्रियों वाले, चित्रों से युक्त संगीत के लिये मृदंग बजाये गये, मणि–जटिल फर्शों वाले, और मेघचुम्बी शिखरों वाले महल, बिजली धारण करने वाले, इन्द्र–धनुष से मुक्त, मधुर एवं गम्भीर गर्जन वाले, (अपने) अन्दर जल (धारण करने) वाले (एवम्) ऊँचे, तुमसे उन उन गुणों के कारण बराबरी करने में असमर्थ (हैं)।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमान्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।2।।

अन्वयः – यत्र वधूनां हस्ते लीलाकमलम्, अलके बालकुन्दानुविद्धम् आनने लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतां श्रीः चूडापाशे नवकुरबकम्, कर्णे चारु शिरीषम्, सीमन्ते च त्वदुपगमजं नीपम् (अस्ति)।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में स्त्रियों के हाथ में क्रीड़ा के लिये कमल केशों में ताजे कुन्द–पुष्पों की गूंथन, मुख पर लोध्र के पुष्पों के पराग से धवल की गई शोभा, केशपाश (जूड़े) में ताजे कुरबक के फूल, कान में सुन्दर पुष्प और मांग में तुम्हारे आने पर उगने वाला कदम्ब का फूल रहता है।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा

हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः।

केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा

नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः।।3।।

अन्वयः – यत्र पादपाः नित्यपुष्पाः उन्मत्तभ्रमरमुखराः, नलिन्यः नित्यपद्माः हंसश्रेणी– रचितरशनाः भवनशिखिनः नित्यभास्वत्कलापाः केकोत्कण्ठाः, प्रदोषाः नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः।

अनुवाद – जिस (अलका) के वृक्ष हमेशा पुष्पों से युक्त, (अतः) मद से मस्त हुए भ्रमरों से गुंजायमान (हैं), कमलिनियां सदा कमलों से युक्त, हंसों की पंक्तियों से बनी हुई तगड़ी वाली (है), घरों के मोर सदा चमकते हुए पंखों वाला, (अतः) बोलते के साथ ऊपर उठी हुई गर्दन वाले (हैं) और रात्रि के प्रारम्भ में सदा चन्द्रिका से युक्त, (अतः) नष्ट हुए अन्धकार के प्रसार वाले और सुन्दर हैं।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै–

र्नान्यस्तापः कुसुमाशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।

नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति

र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति।।4।।

अन्वयः – यत्र वित्तेशानां नयनसलिलम् आनन्दोत्थम्, अन्यैः निमित्तैः न; इष्टसंयोगसाध्यात् कुसुमशरजात् (तापात्) अन्यः न; प्रणयकलहात् अन्यस्मात् (कारणात्) विप्रयोगोपपत्तिः अपि न; यौवनात् अन्यत् वयः च न खलु अस्ति।

अनुवाद – जिस (अलका) में यक्षों के आंसू (हर्ष से ही) उत्पन्न (होते हैं), अन्य कारणों से नहीं; प्रिय जन के मेल से दूर होने वाले, कामदेव से उत्पन्न (ताप) से अतिरिक्त (कोई) सन्ताप नहीं है, प्रणय कलह के अतिरिक्त अन्य (कारण) से वियोग की प्राप्ति भी नहीं है और जवानी के अतिरिक्त कोई दूसरी अवस्था भी नहीं है।

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।

आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं

त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु।।5।।

अन्वयः – यास्यां यक्षाः उत्तमस्त्रीसहायाः (सन्तः) सितमणिमयानि ज्योतिश्छायाकुसुमर– चितानि हर्म्यस्थलानि एत्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु पुष्करेषु शनकैः आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतं रतिफलं मधु आसेवन्ते।

अनुवाद – जिस (अलका) में यक्ष उत्तम स्त्रियों के साथ मिलाकर स्फटिक मणियों से जटित, (अतः) तारों के प्रतिबिम्ब–रूपी कुसुमों से सज्जित, महलों की छतों पर जाकर तुम्हारी गम्भीर ध्वनि के समान ध्वनि वाले तबलों के धीरे से बजाये जाने पर कल्प–वृक्ष से उत्पन्न रति फल नाम की मदिरा का सेवन करते हैं।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि–

र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः।।6।।

अन्वयः – यत्र मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः मरुद्भिः सेव्यमानाः, अनुतटरुहां मन्दाराणां छायया वारितोष्णाः, अमरप्रार्थिता कन्या कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः अन्वेष्टव्यैः मणिभिः संक्रीडन्ते।

अनुवाद – जिस (अलका) में गंगा नदी के जलों के शीतल पवनों द्वारा सेवा की जाती है, तट पर उगे हुए मन्दार वृक्षों की छाया से रोकी गई धूप वाली, देवों द्वारा चाही हुई, कन्यायें सुवर्ण की बालू में मुट्ठी में रखकर छिपाई खोजी जाने वाली मणियों से खेलती हैं।

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।

अर्चिस्तुंगानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्

ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः।।7।।

अन्वयः – यत्र अनिभृतकरेषु प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्सितशिथिलं क्षौमं आक्षिपत्सु ह्रीमूढानां बिम्बाधराणां चूर्णमुष्टिः अर्चिस्तुंगान् रत्नप्रदीपान् अभिमुखं प्राप्य अपि विफलप्रेरणाभवति।

अनुवाद – जिस (अलका) में चंचल हाथों वाले प्रेमियों के अधोवसन की गांठ के खुल जाने से ढीले हुये रेशमी वस्त्र के कारण हटा देने पर लज्जा से हक्की–बक्की हुई, बिम्ब–फल जैसे ओठों वाली (स्त्रियों) की चूर्ण की मुट्ठी किरणों से उन्नत, रत्न के दीपकों के सामने पहुंच कर भी निष्फल फेंकी हुई हो जाती है।

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानग्रभूमी

रालेख्यानां स्वजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्यः।

शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै

र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।।8।।

अन्वयः – नेत्रा सततगतिना यद्विमानाग्रभूमीः नीताः आलेख्यानां सलिलकणिकादोषम् उत्पाद्य सद्यः शंकास्पृष्टाः इव धूमोद्गारानुकृतिनिपुणाः त्वादृशाः जलमुचः जर्जराः जलमार्गैः निष्पतन्ति।

अनुवाद – प्रेरक वायु द्वारा जिस (अलका) के सात मंजिलों वाले भवनों के ऊपर के भागों में ले जाये गये, चित्रों में जल की नन्ही बूंदों से दोष उत्पन्न करके, तत्काल भय से छूये मानो, धुयें के निकलने का अनुकरण करने में चतुर, तुम जैसे जल बरसाने वाले (बादल) छिन्न–भिन्न होकर जालीदार झरोखों में से निकल जाते हैं।

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिंगनोच्छ्वासिताना

मंगग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।

त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः।।9।।

अन्वयः – यत्र निशीथे त्वत्संरोधापगमविशदैः चन्द्रपादैः स्फुटजललवस्यन्दिनः तन्तुजालाव –लम्बाः चन्द्रकान्ताः प्रियतमभुजालिंगनोवासितानाम् स्त्रीणां सुरतजनिताम् अंगग्लानि व्यालुम्पन्ति।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में अर्ध–रात्रि में तेरे उपरोध के हट जाने से उज्जवल चन्द्रमा की किरणों (के सम्पर्क) के कारण मोटी–मोटी जल की बूंदों को बहाने वाली झालरों से लटकती हुई चन्द्रकान्त मणियां प्रियतमों की भुजाओं से शिथिल हुए आलिंगनों वाली स्त्रियों की काम–क्रीड़ा से उत्पन्न शरीर की थकान को दूर करती हैं।

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै

रुदगायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम्।

वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्याः सहायाः

बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।।10।।

अन्वयः – अत्र अक्षय्यान्तर्भवननिधयः विबुधवनितावारमुख्यासहायाः बद्धाः लापाः कामिनः प्रत्यहं रक्तकण्ठैः धनपतियशः उद्गायद्भिः किन्नरैः सार्ध वैभ्राजाख्यं बहिरुपवनं निर्विशन्ति।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में घरों के अन्दर अक्षय कोष वाले, अप्सरा वेश्याओं को साथ लिये बातचीत करते हुए, कामुक लोग प्रतिदिन मधुर कण्ठ वाले (और) कुबरे के यश का उच्च स्वर से गान करने वाले किंपुरुषों के साथ वैभ्राज नाम वाले बाह्य उद्यान का उपभोग करते हैं।

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः

पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।

मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै–

र्नैंशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।11।।

अन्वयः – यत्र कामिनीनां नैशः मार्गः सवितुः उदये (सति) गत्युत्कम्पात् अलकपतितैः मन्दारपुष्पैः कर्णविभ्रंशिभिः पत्रच्छेदैः कनककमलैः च स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः मुक्ताजालैः हारैः च सूच्यते।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में काम–पीड़ित (अभिसारिका) स्त्रियों का रात्रि का मार्ग सूर्य के निकलने पर चलने में हिलने के कारण बालों से गिरे हुये मन्दार के फूलों से, कान से गिरे हुये पत्तों के खण्डों और सुवर्ण कमलों से (तथा) स्तन प्रदेश पर टूटे हुए धागों वाले मोती और पुष्पों के हारों से सूचित हो जाता है।

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं

पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।

लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्यां

मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।12।।

अन्वयः – यस्याम् (अलकायाम्) चित्रं वासः, नयनयोः विभ्रमादेशदक्षं मधु, किसलयैः सह पुष्पोद्भेदम् भूषणानां विकल्पम् चरणकमलन्यासयोग्यं लाक्षारागं च सकलम् अबलामण्डनम् एकः कल्पवृक्षः सूते।

अनुवाद – जिस (अलकापुरी) में नाना–वर्ण के वस्त्र, नेत्रों को विलास सिखाने में समर्थ मद्य, नूतन–पल्लवों के साथ पुष्पों के विकास, आभूषणों के अनेक प्रकार तथा चरण– रूपी कमल में लगाने योग्य महावर–स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन सामग्री को अकेला कल्पवृक्ष (ही) उत्पन्न कर देता है।

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः

शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात्।

योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः

प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणांकैः।।13।।

अन्वयः – यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः, करिणः शेलोदग्राः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः (च), योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखं तस्थिवांसः चन्द्रहासवणांकैः प्रत्यादिष्टा– भरणरुचयः।

अनुवाद – जिस (अलका) में घोड़े पत्तों के समान हरे (इसलिये) सूर्य के घोड़ों की बराबरी करने वाले हैं। हाथी पर्वतों के समान ऊँचे (और) मद बहने के कारण तेरे समान वर्षा करने वाले (हैं), श्रेष्ठ भट युद्ध में रावण के सामने ठहर चुके हुए (इसलिये) (रावण की) चन्द्रहास नामक तलवार के घावों के चिह्नों के कारण आभूषणों की इच्छा त्यागे हुये (हैं)।

मत्वां देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं

प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम्।

सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः।।14।।

अन्वयः – यत्र मन्मथः धनपतिसखं देवं साक्षात् वसन्तं मत्वा भयात् षट्पदज्यं चापं प्रायः न वहति, तस्य आरम्भः सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येषु अमोघैः चतुरवनिताविभ्रमैः एव सिद्धः।

अनुवाद – जिस (अलका) में कामदेव कुबेर के मित्र महादेव को प्रत्यक्ष रूप से रहता हुआ जानकर भय के कारण भौंरों रूपी डोरी वाले धनुष को बहुधा धारण नहीं करता, (क्योंकि) उसका काम टेढ़ी भौं करके चलाये गये नेत्रों वाले, कामुक–जन रूपी निशानों पर अचूक चतुर स्त्रियों के हाव भावों से ही बन जाता है।

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।

तस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तबकमितो बालमन्दारवृक्षः।।15।।

अन्वयः – तत्र धनपतिगृहान् उत्तरेण अस्मदीयम् आगारं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरेणेन दूरात् लक्ष्यम्, अस्य उपान्ते मे कान्तया वर्धितः कृतकतनयः हस्तप्राप्यस्तबकनमितः बालमन्दारवृक्षः (अस्ति)।

अनुवाद – वहां (अलका में) धन का स्वामी (कुबेर) के महल से उत्तर की ओर पास ही हमारा घर इन्द्र–धनुष के समान सुन्दर मेहराबदार दरवाजे से दूर से (ही) पहचाना जा सकता है, जिसके पास में मेरी प्रियतमा द्वारा पाला हुआ, गोद लिया हुआ, (और) हाथ की पहुंच में आ सकने वाले फूलों के गुच्छों द्वारा झुकाया गया छोटा सा मन्दार पेड़ है।

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा

हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्वामपि प्रेक्ष्यः हंसाः।।16।।

अन्वयः – अस्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा स्निग्धवैदूर्यनालैः हैमैः विकचकमलैः छन्ना वापी च (अस्ति), यस्याः तोये कृतवसतयः व्यपगतशुचः हंसा त्वां प्रेक्ष्य सन्निकष्टं मानसं न आध्यास्यन्ति।

अनुवाद – और इस (मेरे घर) में पन्ने की सिल्लियों से बनी हुइ सीढ़ियों वाली, चिकने लहसुनिये रत्न के समान नाल वाले, सुवर्ण–मय, खिले हुये कमलों से ढकी हुई बावड़ी है, जिसके जल में वास करने वाले, (अतः) दुःख नष्ट हुए हंस तुम्हें देखकर भी समीपवर्ती मानसरोवर के लिये उत्सुक नहीं होते हैं।

तस्यास्तीरे रचितशिखिरः पेशलैरिन्द्रनीलैः

क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः

मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।17।।

अन्वयः – तस्याः तीरे पेशलैः इन्द्रनीलैः रचितशिरः कनककदलीवेष्टन प्रेक्षणीयः क्रीडाशैलः (अस्ति)। सखे, उपान्तस्फुरिततडितं त्वां प्रेक्ष्य–मद्गोहिन्याः प्रियः इति–कातरेण चेतसा तम एव स्मरामि।

अनुवाद – उस (बावड़ी) के किनारे पर सुन्दर नीलम मणियों से बनी हुई चोटी वाला (और) सुनहरी केलियों की बाड़ के कारण सुन्दर दीखने वाला क्रीड़ा पर्वत है। हे मित्र, किनारों पर चमकती हुई बिजली वाले तुमकों देखकर–मेरी घर वाली का प्रिय है, इस कारण (व्याकुल चित्त से) उसे ही याद कर रहा हूं।

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः

प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः।।18।।

अन्वयः – अत्र कुरबकवृतेः माधवीमण्डस्य प्रत्यासन्नौ चलकिसलयः रक्ताशोकः कान्तः केसरः च। मया सह एकः (दोहदच्छद्मना) तव सख्याः वामपादाभिलाषी, अन्य दोहदच्छद्मना अस्याः वदनमदिरां कांक्षति।

अनुवाद – यहां (क्रीड़ा शैल पर) कुरबक की बाड़ वाले माधवीलता के कुंज के बिल्कुल पास में स्थित हिलाते हुए नये पत्तों वाला अशोक और सुन्दर मौलसिरी के पेड़ हैं। मेरे साथ–साथ (उनमें से) एक (अशोक) (दोहज के ब्याज से) तेरी सखी के बायें पैर (के प्रहार) का अभिलाषी है, और दूसरा दोहर के ब्याज से इसके मुख की मदिरा की अभिलाषा करता है।

तन्मध्ये च स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टि

र्मूले बद्ध मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।

तालैः शिंजावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः।।19।।

अन्वयः – तन्मध्ये च मूल अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः मणिभिः स्फटिकफलका कांचनी वासयष्टिः (अस्ति), मे कान्तया शिंजावलयसुभगैः तालैः नर्तित वः सुहृत् नीलकण्ठ दिवसविगमे याम् अध्यास्ते।

अनुवाद – और उन (वृक्षों) के बीच में जड़ में नये बांस के समान क्रान्ति वाली (मरकत) मणियों से चबूतरी बनाई गई, बिल्लौर मणि के फट्टे वाली, सोने की (पक्षियों की) छतरी है, मेरी प्रिय द्वारा झन–झन बजते हुए कंगनों से मनोहर तालियों से नचाया गया तुम्हारा मित्र मयूर दिन के बीतने पर जिस पर बैठा करता है।

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा।

क्षामच्छाय भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं

सूर्यापाये न खुल कमलं पुष्पति स्वामभिख्याम्।।20।।

अन्वयः – साधो, हृदयनिहितैः एभिः लक्षणैः लिखितवपुषौ शंकपद्मौ दृष्ट्वा च अधुना मद्वियोगेन नूनं क्षामच्छायं भवनं लक्षयेथाः, सूर्यापाये कमलं स्वाम् अभिख्यां न पुष्यति खलु।

अनुवाद – हे निपुण (मेघ) (तुम) हृदय में रखे गये इन लक्ष्णों के (और) द्वार के पार्श्वों (बाजुओं) पर बनाये गये आकार बाले शंख और पद्म (निधि) को देखकर अब मेरे विरह से अवश्य ही क्षीण–शोभा वाले (मेरे) भवन को पहचान लेना। सचमुच, सूर्य के चले जाने पर कमल अपनी शोभा को पुष्ट नहीं करता है।

गत्वा सद्यःकलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।

अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्यपाल्पभासं

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।।21।।

अन्वयः – शीघ्रसंपातेहेतोः कलभतनुतां गत्वा प्रथमकथिते रम्यसानौ क्रीडाशैले निषण्णः (त्वम्) अल्पाल्पभासं खद्यौतालीविलसितनिभो विद्युदुन्मेषदृष्टिम् अन्तर्भवनपतिता कर्तुम् अर्हसि।

अनुवाद – शीघ्र नीचे उतरने के लिये जल्दी से हाथी के बच्चे के आकार की अवस्था को पाकर पहले कहे गये सुन्दर शिखर वाले क्रीडा शैल पर बैठे हुये (तुम) मन्द–मन्द प्रकाश वाली (अतः) जुगनुओं की पंक्ति की टिमटिमाहट के तुल्य, बिजली की चमक रूपी दृष्टि को भवन के अन्दर पड़ी हुई कर सकते हो।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।।22।।

अन्वयः – तत्र तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वबिम्बाधरोष्ठी, मध्ये क्षामा, चकितहरिणी– प्रेक्षणाः, निम्ननाभिः, श्रोणीभारात् अलसगमना, स्तताभ्यां स्तोकनम्रा, युवतिविषये धातुः आद्या सृष्टिः इव या स्यात् (तां मे द्वितीयं जीवितं जानीथाः)।

अनुवाद – वहां (भवन के अन्दर) पतले शरीर वाली, नव यौवन वाली, नुकीले दांतों वाली, पले हुए बिम्ब फल के जैसे निचले ओठ वाली, कठि में क्षीण, भयभीत हरिणी के समान नेत्र वाली, नितम्बों के भार के कारण मन्द गति वाली स्तनों के कारण झुकी हुई, युवा स्त्रियों के क्षेत्र में ब्रह्माकी, मानो, प्रथम कृति जो (स्त्री) हो (उसे मेरा दूसरा प्राण समझना)।

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।

गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां

जातां मन्ये शिशिरमाथितां पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम्।।23।।

अन्वयः – मयि सहचरे दूरीभूते चक्रवाकीम् इव एकां परिमितकथां तां मे द्वितीय जीवितं जानीथाः। गुरुषु एषु दिवयेषु गच्छत्सु गाढोत्कण्ठां बालां शिशिरमथितां पद्मिनीं वा अन्यरूपां जातां मन्ये।

अनुवाद – मुझे साथी के दूर स्थित होने पर चकवी के समान अकेली, (अतः) अल्प– भाषिणी उस (स्त्री) को मेरा दूसरा प्राण समझना। (अथवा) (विरह से) लम्बे इन दिनों के बीतते हुये होने पर प्रबल विरह–वेदना वाली (उस) युवती की शीत से मारी गई कमलिनी के समान अन्य रूप वाली हुई समझता हूं।

नूनं तस्याः प्रबलरूदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्त मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।।24।।

अन्यवः – प्रबलरूदितोच्छूननेत्रं निःश्वासानाम् अशिशिरतया भिन्नवर्णा धरोष्ठं हस्तन्यस्तं लम्बालकत्वात् असकलव्यक्ति तस्याः प्रियायाः मुखं त्वदनुसरणक्लिष्टकानतेः इन्दोः दैन्यं विभर्ति नूनम्।

अनुवाद – मेरा विचार है कि सम्भवतः (नूनम्) बहुत अधिक रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, लम्बे–लम्बे सांसों की गर्मी से कान्ति–हीन निचले ओठ वाला, हाथ पर रखा हुआ, लम्बे लटके बालों वाला होने के कारण सम्पूर्ण न दीखने वाला, उस प्रिया का मुख तुम्हारे रोकने से फीकी कान्ति वाले चन्द्रमा की विवर्णता को धारण कर रहा होगा।

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृश्छन्तीवा मधुरवचनां सारिकां पंजरस्थां

कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।।25।।

अन्वयः – सा बलिव्याकुला वा, विरहतनु भावगम्यं मत्सादृश्यं लिखन्तां वा, मधुरवचनां पंजरस्थां सारिकाम्' 'रसिके', भर्तुः स्मरसि कच्चित्, हि त्वं तस्य प्रिया' इति पृच्छन्ती वा ते आलोके पुरा निपति।

अनुवाद – वह (मेरी प्रिया) पूजा उपहार में लगी हुई, या विरह से दुबले हुए (और) कल्पना से ही जाने गये मेरे आकार को चित्रित करती हुई या मीठा बोलने वाली पिंजड़े में बन्द मैना से– 'हे रसिके ! क्या तुझे स्वामी की याद आती है, क्योंकि तू (तो) उसकी प्यारी है' – यह पूछती हुई तेरी दृष्टि में पड़ेगी।

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्रांकं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।26।।

अन्वयः – सौम्य, मलिनवसने उत्संगे वीणां निक्षिप्यं मद्गोत्रांकं विरचिपदं गेयम् उद्गातुकामा नयनसलिलैः आर्द्रा तन्त्रों कथंचित् सारयित्वा भूयः भूयः स्वयं कृताम् अपि मूर्च्छना विस्मरन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति)।

अनुवाद – अथवा, हे सौम्य, मैले वस्त्रों वाले अंक में वीणा रखकर मेरे नाम के चिह्न वाले (तथा) रचे हुए पदों वाले गेय (प्रबन्ध) की गाने की इच्छुक, (परन्तु) आंखों के जलों से गीले हुए तार को किसी प्रकार ठीक करके बार–बार स्वयं बनाई गई भी मूर्च्छना को भूलती हुई (मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में पड़ेगी)।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणयना देहलीदत्तपुष्पैः।

संभोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती

प्रायेणैते रमणविरहेष्वंगनानां विनोदाः।।27।।

अन्वयः – विरहदिसस्थापितस्य अवधेः शेषान् मासान् देहलीदत्तपुष्पैः गणनया भुवि विन्यस्यन्ती वा, हृदयनिहितारम्भसंभोगम् आस्वादयन्ती वा (ते आलोके पुरा निपतति), प्रायेण अंगनानां रमणविरहेषु एते विनोदाः।

अनुवाद – अथवा विरह के दिन से निश्चित हुई (शाप की) अवधि (एक वर्ष) के शेष बचे हुये महिनों को ड्यौढ़ी (दहलीज) में रखे हुये पुष्पों के द्वारा गिन–गिर कर पृथ्वी पर रखती हुई, अथवा हृदय में (ही) रखी गई चेष्टा वाले रति–सुख का आस्वादन करती हुई (वह मेरी प्रिया तेरी दृष्टि में पड़ेगी), क्योंकि बहुधा स्त्रियों के प्रियों के वियोग में ये ही मन–बहलाव होते हैं।

सव्यापारमहनि न तथा पीडयेद्विप्रयोगः

शंके रात्रो गुरूतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे।

तामुन्निद्रामवशियना सौधवातायनस्थः।।28।।

अन्वयः – अहनि अव्यापारां ते सखीं विप्रयोगः तथा न पीडयेत्, रात्रो निर्विनोदां गुरूतरशुचं शंके। निशीथे उन्निद्राम् अवनिशयानां साध्वीं तां मत्संदेशौः अलं सुखियितुं सौधवातायनस्थः पश्य।

अनुवाद – दिन में कामों में लगी हुई तेरी सखी को (मेरा) वियोग बहुत अधिक न सताता होगा, रात में विनोद रहित (तेरी सखी के) और अधिक दुःखी होने की आशंका करता हूं (इसलिये) आधी रात में जागती हुई, भूमि पर लेटी हुई, पतिव्रता उस (अपनी सखी) को मेरे संदेश द्वारा अत्यधिक सुखी करने के लिये महल के झरोखे में बैठकर देखना।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां

प्राचीमूले तनुमवि कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।29।।

अन्वयः – आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां प्राचीमूले कलामात्रशेषां हिमांशोः तनुम्, इव (स्थिताम्), या रात्रिः मया सार्धम् इच्छारतैः क्षणः इव नीता ताम् इव विरहमहतीम् उष्णैः अश्रुभिः यापयन्तीम् (तां साध्वीं पश्य)।

अनुवाद – मनोव्यथा से क्षीण हुई, विरह की सेज पर टिके हुए एक पार्श्व वाली, मानो पूर्व दिशा में मूल (क्षितिज) में केवल एक भाग बची हुई चन्द्रमा की मूर्ति, जो रात्रि मेरे साथ इच्छानुसार किये रति–सुख से एक क्षण के समान व्यतीत की थी, उसे ही विरह के कारण लम्बी हुई को गर्म आंसुओं के साथ बिताती हुई (उस पतिव्रता को देखना)।

पादानिन्दोरमृतशिशिरांजालमार्गप्रविष्टा

न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं नप्रबुद्धां नसुप्ताम्।।30।।

अन्वयः – जालमार्गप्रविष्टान् अमृतशिशिरान् इन्दोः पादान् पूर्वप्रीत्या अभिमुखं गतं तथा एव संनिवृत्तं चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिः छादयन्तीं साभ्रे अह्नि नप्रबुद्धां नसुप्तां स्थलकमलिनीम् इव (तां साध्वीं पश्य)।

अनुवाद – झरोखों के रास्ते अन्दर आई हुई अमृत के समान शीतल, चन्द्रमा की किरणों पर पहले चाव के कारण सामने गई हुई (लेकिन) तुरन्त ही लौटी हुई दृष्टि जो दुःख के कारण आंसुओं से भरी पलकों से ढकती हुई, मेघों से आच्छन्न दिन में न विकसित (और) न ही मुकुलित स्थलकमलिनी के समान (स्थित) (उस पतिव्रता को देखना)।

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।

मत्संभोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा–

माकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्।।31।।

अन्वयः – शुद्धस्नानात् परुषं नूनम् आगण्डलम्बम् अलकम् अधरकिसलयक्लेशिना निःश्वासने विक्षिपन्तीं स्वप्नजः अपि मत्सभोगः कथम् उपनमेत् इति नयनसलिलोत्पीड– रुद्धावकाशां निद्राम् आकांक्षन्तीम् (तां साध्वीं पश्य)।

अनुवाद – सादे स्नान से रूखे, निश्चय ही कपोलों तक लटकने वाले बालों की कोंपल जैसे निचले ओठ को विवर्ण कर देने वाले लम्बे सांस से हिलाती हुई, (तथा) स्वप्न में हुआ भी मेरा संभोग किसी प्रकार प्राप्त हो जाये – इस प्रकार आंखों के पानी के प्रवाह से रोके गये स्थान वाली निद्रा की इच्छा करती हुई (उस पतिव्रता को देखना)।

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा

शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयम्।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनेखनसकृत्सारयन्ती

गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण।।32।।

अन्वयः – आद्ये विरहदिवसे दाम हित्वा या शिखा बद्धा, शापस्य अन्ते विगलितशुचा मया उद्वेष्टनीयां स्पर्शक्लिष्टां कठिनविषमाम् एकवेणीं ताम् अयमितनखेन करेण गण्डाभोगात् असकृत् सारयन्तीम् (तां साध्वी पश्य)।

अनुवाद – विरह के पहले दिन पुष्पमाला का त्याग करके जो चोटी गूंथी थी, शाप की समाप्ति पर नष्ट हुये शोक वाले मेरे द्वारा खोली जाने वाली, छूने में दुःखदायी कठोर और उलझी हुई एक वेणी रूप उस (शिखा) को बिना कटे नाखूनों वाले हाथ से गालों के प्रदेश से बार–बारे हटाती हुई (उस पतिव्रता को देखना)।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्संगे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम्।

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा।।33।।

अन्वयः – अबला संन्यस्ताभरणम् असकृत् दुःखदुःखेन शय्योत्संग निहित पेशलं गात्रं धारयन्ती सा अवश्यं त्वाम् अपि नवजलमयम् अस्रम मोचयिष्यति। प्रायः आर्द्रान्तरात्मा सर्वः करुणावृत्तिः भवति।

अनुवाद – दुर्बल हुई (तथा) आभूषणों का त्याग किये हुये, बार–बार कठिनाई से सेज पर रखे हुये, कोमल शरीर को धारण करने वाली वह (तुम्हारी सखी) निःसन्देह तुमको भी नये जल के रूप में आंसू बहाने के लिये लाचार कर देगी। बहुधा कोमल हृदय वाले सभी दयालु स्वभाव के होते हैं।

जाने संख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा–

दित्थंभूता प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।

वाचालं मां न खलु सुभगमन्यभावः करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्।।34।।

अन्वयः – तव सख्याः मन मयि संभृतस्नेहं जाने अस्मात् तां प्रथमविरहे इत्थभूतां तर्कयामि, सुभगमन्यभावः मां वाचालं न करोति खलु। भ्रातः मया तत् उक्तम् (तत्) निखिलम् अचिरात् ते प्रत्यक्षम् (भविष्यातिः)।

अनुवाद – (मैं) तब तेरी सखी के मन को अपने प्रति स्नेह से भरा हुआ जानता हूं, इसीलिये मैं उस प्रथम वियोग में इस प्रकार हुई सोचता हूं; सचमुच (स्वयं को) सुन्दर समझने की भावना मुझे मुखर नहीं बना रही है। हे भाई मैंने जो कहा है, (वह) सब जल्दी ही तुम्हें प्रत्यक्ष (हो जायेगा)।

रुद्धापांगप्रसरमलकैरंजनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपिच मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शंके मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति।।35।।

अन्वयः – अलकैः रुद्धापांगप्रसरम् अंजनस्नेहशून्यम् अपि च मधुनः प्रत्यादेशात् विस्मृत भ्रूविलासं त्वयि आसन्ने उपरिस्पादि मृगाक्ष्याः नयनं मीन क्षोभात् चलकुवलय– श्रीतुलाम् एष्यति इति शंके।

अनुवाद – बालों से रोकी गई कोरों की गति वाला, काजल की चिकनाई से रहित, और मद्य के त्याग से भीवों के विकास को भूला हुआ, तुम्हारे समीप आने पर ऊपर के भाग में पकड़ने वाला, मृगनयनी का (बायां) नेत्र मछली की हलचल के कारण चंचल कमल की शोभा की समानता को प्राप्त होगा – ऐसा मेरा विचार है।

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै–

र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।36।।

अन्वयः – मदीयैः कररुहपदैः मुच्यानः चिरपरिचितं मुक्ताजालं दैवगत्या त्याजितः संभोगान्ते मम हस्तसंवाहनानां समुचितः सरसकदलीस्तम्भगौरः अस्याः वामः ऊरुः च चलत्वं यास्यति।

अनुवाद – और मेरे (द्वारा किये गये) नखों के चिह्नों से छोड़ी हुई भाग्य के फेरे से लम्बे समय से परिचित मोतियों की लड़ी छुड़ाई गई, संभोग के बाद मेरे हाथों में दबाई जाने योग्य, केले के तने के समान गोरी–गोरी, इस (मेरी प्रिया) की बाईं जांघ फड़क उठेगी।

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या–

दन्वास्यैना स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि–

त्सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थिगाढोपगूढम्।।37।।

अन्वयः – जलद, तस्मिन् काले यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्यात्, एनाम् अन्वास्य स्तनितविमुखः याममात्रं सहस्व। अस्याः मयि प्रणयिनि कथंजित् स्वप्नलब्धे (सति) गाढोपगूढं सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि या भूत।

अनुवाद – हे मेघ, उस समय यदि वह निद्रा के सुख को प्राप्त हो तो उसके पास बैठकर गर्जन से परांमुख होकर पहर भर प्रतीक्षा कर लेना (जिससे कि) इसका मुख प्रिय के किसी प्रकार स्वप्न में मिलने पर (किया गया गाढ आलिंगन) तुरन्त कण्ठ में शिथिल हुए लता–जैसी भुजाओं के बन्धन वाला न हो जाय।

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन

प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैजलिकैर्मालतीनाम्।

विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे

वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः।।38।।

अन्वयः – विद्युद्गभ्रः धीरः (च सन् त्वम्) स्वजलकणिकाशीतलेन अनि लेन तां मानिनीम् उत्थाप्य मालतीनाम् अभिनवैः जालकैः समं प्रत्याश्वस्ताम्, त्वत्सनाथे गवाक्षे स्तिमितनयनां स्तनितवचनैः वक्तुं प्रक्रमेथाः।

अनुवाद – मध्य भाग में बिजली वाले (और) धीरे हुए (तुम) अपने जल की नन्हीं बुंदों से शीतल पवन द्वारा उस मनस्विनी को उठाकर चमेली के ताले गुच्छों के साथ–साथ स्वस्थ हुई तथा तुमसे युक्त झरोखे पर दृष्टि लगाई हुई के साथ गर्जन रूपी वचनों से बोलना प्रारम्भ करना।

भर्तुमित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं

तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां

मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।।39।।

अन्वयः – अविधवे, मां भर्तुः प्रियं मित्रं हृदयनिहितै, तत्संदेशैः त्वत्समीपम् आगतम् अम्बुवाहं विद्धि, यः मन्द्रस्निग्धैः ध्वनिभिः अबलावेणिमोक्षात्सुकानि पथि श्राम्यतां प्रोषितानां त्वरयति।

अनुवाद – हे सौभाग्यवती, मुझे (अपने) पति का प्रिय मित्र (और) हृदय में रखे हुये उसके संदेशों के साथ तेरे समीप आया हुआ मेघ जानो, जो (मेघ) (अपनी) गम्भीर और मधुर ध्वनियों से अबला जनों की चोटियों को खोलने के लिये लालायित हुए, मार्ग में थके हुये प्रवासियों के संघों को प्रेरित करता है।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम्।

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां

कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदुनः।।40।।

अन्वयः – इति एवम् आख्याते उन्मुखी उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया सा, पवन तनयं मैथिलीव, त्वां वीक्ष्या संभाव्य च अस्मात् परम् अवहिता (सती) श्रोष्यति, सौम्य सीमन्तिनीतां सुहृदुपनतः कान्तोदन्तः संगमात् किंचिदूनः (भवति)।

अनुवाद – इस प्रकार कहा जाने पर ऊपर की ओर मुख किये (और) उत्सुकता से फूले हुए हृदय वाली यह (मेरी प्रिया), वचन के पुत्र (हनुमान) का सीता के समान, तुम्हें देखकर और तुम्हारा आदर करके सावधान होकर सुनेगी, (क्योंकि) हे सौम्य, स्त्रियों को (पति के) मित्र द्वारा लाया गया पति का वृत्तान्त मिलन से कुछ ही कम होता है।

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

ब्रूया एवं ता सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः

अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः

पूर्वाभाष्य सुलभविपदां प्राणिनामेदेव।।41।।

अन्वयः – असयुष्मान् मम च आत्मनः वचनाज् (मम) उपकर्तुतम् एवं ब्रूयाः – 'अबले, तव सहचरः रामगिर्याश्रमस्थः अप्व्यापनः, वियुक्तः त्वां कुशलं पृच्छति।' सुलभविपदां प्राजिणनाम् एतद् एव पूर्पाभाष्सम्।

अनुवाद – हे आयुष्मान् मेरी ओर से (मेरे) हित के लिये तुम उस (मेरी प्रिया) से इस प्रकार से कहना – 'हे अबले, तेरा साथी रामगिरि के आश्रमों में स्थित है (और) जीवित है, बिछड़ा हुआ (वह) तुम्हारी कुशल पूछता है।' सहज ही विपत्तियों को पाने वाली प्राणियों से यह (कुशल–प्रश्न) ही पहले पूछना चाहिये।

अंगेनांगं प्रतनु तनुना गाढतप्तेनतप्तं

साम्रेणाभ्द्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती

संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः।।42।।

अन्वयः – वैरिण विधिना रूद्धमार्गः दूरवजर्ती (तव सहचरः) तनुना, गाढतप्तेन, साम्रेण, उत्कण्ठितेन समधिकतरोच्छ्पासिना अंगेन (त्वदीसम्) प्रतुन, तप्तम् अश्रुद्रुतम् बविरतोत्कण्ठम्, उष्णोव्छ्वासं उंग तैः सकल्पैः विशाति।

अनुवाद – प्रतिकुल भाग्य द्वार रोक लिये गये मार्ग वाला (और) दूर रहने वाला तेरी साथी (अपने) दुर्बल, अत्यधिक संतप्त, आंसुओं से युक्त, चाह से भरे हुए और लम्बे– लम्बे उसासरों वाले शरीर द्वारा (तेरे) अत्यधिक कृश तपे हुए, आंसू बहे हुए, सतत उत्कण्ठा से भरे हुए (और) गर्म उसांसों वाले शरीर से उन–उन मनोरथों के साथ मिलता है।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता–

त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।

सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य

स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।43।।

अन्वयः – यः ते सुखीनां पूरस्तात् शब्दाख्येम्, अपि सत् (तत्) आननस्पर्शलभोत् कर्णे कथाचितुं लोलः अभूत् किल, श्रवणविषयम् अतिक्रान्तः लोचपसनाभ्याम् अदृश्यः स त्वम् उत्कठाविरवितपदम् इदं मुन्मुखेन आह।

अनुवाद – जो तेरी सखियों के सामने शब्दों से कहने योग्य भी जो (होता था), उसे सचमुच (तेरे मुख के स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिये लालयित रहता था, कानों की पहुंच से बाहर हुआ और नेत्रों से न दीख पड़ने वाला वह) तुम्हारा प्रिय उत्सुकता से रचे गये शब्दों वाले इस (संदेश) को मेरे द्वारा तुमसे कहता है।

श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं

वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रुविलासान्

हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृशयमस्ति।।44।।

अन्वयः – श्यामासु अंगम्, चकितहरिणोप्रेक्षणे दृष्टिपातम्, शशिनि वक्त्रच्छायाम्, शिखिनां बर्हभारेषु केशान् प्रतनुष नदीवीचिषु भ्रुविलासाम् उत्पश्यामि। हन्त ! चण्डि, क्वचिदपि एकस्मिन् ते सादृश्यं न अस्ति।

अनुवाद – प्रियंगु लताओं में (तेरे) शरीर की, भयभीत हरिणी के दृष्टिक्षेप में (तेरी) चितवन की, चन्द्रमा में (तेरे) मुख की कान्ति की, मयूरों के पंखों के समूहों से (तेरे) केशों की (और) हल्की–हल्की नदी तरंगों में (तेरे) भ्रू–भंगों की कल्पना किया करता हूं। खेद है कि हे कोपने, किसी भी एक (वस्तु) में तेरी समानता नहीं है।

त्वामलिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

अश्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।45।।

अन्वयः – प्रणयकुपितां त्वां धातुरागैः शिलायाम् आलिख्य यावत् आत्मानं ते चरणपतितं कर्तुम् इच्छामि तावत् मुहुः उपचितैः अश्रैः में दृष्टिः आलुप्यते। क्रूरः कृतान्तः तस्मिन् अपि नौ संगमं न सहते।

अनुवाद – प्रणय मान में रूठी हुई तेरा गेरू रंग से पत्थर पर चित्र बनाकर जैसे ही मैं स्वयं तेरे चरणों में गिरा हुआ चित्रित करना चाहता हूं वैसे ही बार–बार उमड़े आंसुओं से मेरी दृष्टि लुप्त हो जाती है। निर्दय देव (चित्र) में भी हमारे मिलन को नहीं सहता।

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो

र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां

मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति।।46।।

अन्वयः – स्वप्नसंदर्शनेषु मया कथमपि लब्धायाः ते निर्दयाश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजं मां पश्यन्तीनां स्थलीदेवतानां मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः तरूकिसलयेषु बहुशः न पतन्ति खलु न।

अनुवाद – स्वप्न विज्ञानों मेरे द्वारा किसी प्रकार (कठिनाई से) प्राप्त हुई तेरे गाढ़ आलिंगन के लिये आकाश में भुजा फैलाये हुये मुझे देखती हुई वन–स्थली की देवियों के मोती जैसी मोटे आंसूओं के कण वृक्षों की कपोलों पर सचमुच बहुत बार नहीं गिरते हैं – (यह बात) नहीं।

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां

ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।

आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः

पूर्वं स्पष्टं यदि किल भवेदंगमेभिस्तवेति।।47।।

अन्वयः – गुणवति, देवदारूद्रुमाणां किसलयपुटान् सद्यः भित्त्वा तक्षीरस्रुतिसुरभयः ये दक्षिणेन प्रवृत्ताः मया ते तुषाराद्रिवाताः 'एभिः यदि तव अंग पूर्वस्पृष्टं भवेत् किल इति आलिंग्यन्ते।

अनुवाद – हे गुणशालिनी देवदारू वृक्षों की कोपलों की परतों को तत्काल भेदकर उनके दूध स्राव से सुगन्धित जो (पवन) दक्षिण की ओर चलते हैं, मैं उन हिमालय पर्वत के पवनों का इन्होंने सम्भवतः तेरे शरीर का पहले स्पर्श किया होगा, इस विचार से आलिंगान करता हूं।

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घमाया त्रियामा

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।

इत्थं चेतश्चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनं मे

गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः।।48।।

अन्वयः – दीर्घमाया त्रिमाया क्षणः अव कथं संक्षिप्येत, अहः अपि सर्वा वस्थासु मन्दमन्दातपं कथं स्यात्। चटुलनयने, इत्थं दुर्लभपार्थनं मे चेतः गाढौष्याभिः अशरणं कृतम्।

अनुवाद – लम्बे पहरों वाली रात क्षण के समान किस प्रकार छोटी होवें और दिन सब दिशाओं में मन्दी मन्दी धूप वाले कैसे हो ? हे चंचल नेत्रों वाली, इस प्रकार दुष्प्राप्य अभिलाषा वाले मेरे मन को अतीव ताप वाली तेरे वियोग की पीड़ाओं ने अनाथ बना दिया है।

नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मनैवावलम्बे

तत्कल्याणि ! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वचा

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।49।।

अन्वयः – ननु बहु विगणयन् (अहम्) आत्मानं एव आत्मना अवलम्बे। कल्याणि, तत् त्वम् अपि नितरां कातरत्वं मा गमः। अत्यन्तं सुखम् एकान्ततः दुःखं वा कस्य उपनतम् ? दशा चक्रनेमिक्रमेण नीचैः उपरि च गच्छति।

अनुवाद – (आगे पीछे का) बहुत विचार करते हुए (मैं) अपने आप ही अपने को सहारा दिये रहता हूं। हे सुभगे, इसलिये तू भी बहुत अधिक व्याकुल न हो। एकदम सुख अथवा एकदम दुःख किसे मिला है ? दशा पहिये के किनारे के समान नीचे और ऊपर जाती है।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ंगपाणौ

शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।

पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।।50।।

अन्वयः – शार्ंगपाणौ भुजगशयनाद् उत्थिते मे शापान्तः, शेषान् चतुरः मासान् लोचने मीलयित्वा गमय। पश्चात् आवा विरहगणितं तम् तम् आत्मभिलाषां परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु निर्वेक्ष्याव।

अनुवाद – भगवान् विष्णु के शेषनागरूपी शय्या से उठ जाने पर मेरे शाप का अन्त (होगा), (इसलिये), तू शेष चार महीने आंख मींचकर बिता ले। फिर हम दोनों विरह में विचारी गई उन इच्छाओं को ढली हुई शरद् ऋतु की चांदनी वाली रात्रियों में भोगेंगे।

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे

निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वरं विप्रबुद्धा।

सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे

दृष्टः स्वप्ने कितव ! रमयन्कामपि त्वं मयेति।।51।।

अन्वयः – भूयः च आहः – 'पूरा शयने मे कण्ठलग्ना अपि त्वां निद्रा गत्वा किमपि सस्वनं रुदती विप्रबुद्धाः त्वया च असकृत् पृच्छतः में सान्तर्हासं कथितम् – 'कितव, मया स्वप्ने कामपि रमयन् दृष्टः' इति।

अनुवाद – (तेरे सहचर ने) और आगे कहा है – ''पहले कभी बिस्तर पर मेरे गले लगी हुई तुम नींद में पड़कर किसी कारण जोर से रोती हुई जाग पड़ी थीं और तुमने बार– बार पूछने वाले मुझसे मन ही मन हंसी के साथ कहा था – 'अरे धूर्त, मैंने स्वप्न में तुझे किसी (स्त्री) के साथ रमण करते देखा है।''

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा

मा कौलीनादसितनयने ! मय्यविश्वासिनी मा भूः।

स्नेहानाहुः किमपी विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा–

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।।52।।

अन्वयः – असितनयने एतस्मात् अभिज्ञानदानात् मा कुशलिनं विदित्वा कौलीनाद् मयि अविश्वासिनी मा भूः। स्नेहान् विरहे ध्वंसिनः किमपि आहुः, ते तु अभोगात् इष्टे वस्तुनि उपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति।

अनुवाद – हे काले नेत्रों वाली, इस पहचान देने में सकुशल जानकर लोकापवाद (अफवाह) के कारण मेरे प्रति अविश्वासी न हो। स्नेहों को वियोग में नष्ट हो जाने वाले व्यर्थ (झूठ) ही कहते है; वे तो भोगे न जाने के कारण प्रिय वस्तु के प्रति रस को बढ़ाकर प्रेम–राशि हो जाते हैं।

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते

शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि

प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः।।53।।

अन्वयः – प्रथमविरहदग्रहशोकां ते सखाम् एवम् आश्वास्य त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् शैलात् आशु निवृत्तः सन् (त्वम्) साभिज्ञानप्रहितकुशलैः तद्वचोभिः प्रातः कुन्दप्रससवशिथिलं मम अपि जीवितं धारयेथाः।

अनुवाद – पहले पहल वियोग के कारण तीव्र दुःख वाली अपनी सखी को इस प्रकार आश्वासन देकर तीन नेत्रों वाले (शिव) के बैल द्वारा उखाड़े गये शिखरों वाले (कैलास) पर्वत से शीघ्र (ही) लौट कर (तुम) उस (मेरी प्रिया) के वचनों से, जिनमें अभिज्ञान के साथ कुशल समाचार भेजा गया है, प्रभात में कुन्द–पुष्प के समान शिथिल हुए, मेरे भी प्राणों को धारण करना।

कच्चित्सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशान्नः खुल भवतो धीरतां कल्पयामि

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।54।।

अन्वयः – सौम्य, त्वया मे इदं बन्धुकृत्यं व्यवसितं कच्चित् ? प्रत्यादेशात् भवतः धीरतां न कल्पयामि खुल याचितः (त्वम्) निःशब्दः अपि चातकेभ्यः जलं प्रदिशसि। हि सताम् ईप्सितार्थक्रिया एव प्रणयिषु उत्तरम्।

अनुवाद – हे भद्र, तुमने मेरा यह मित्र का कार्य (करना) निश्चित कर लिया है न ? निश्चित ही (मैं) आपकी धीरता (चुप्पी) को अस्वीकृति का कारण नहीं समझता हूँ, (क्योंकि) तुम मांगने पर चुप–चाप रहकर भी चातकों को जल देते हो। सज्जनों के अभिलषित प्रयोजन को कर देना ही याचकों को प्रति उत्तर होता है।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे

सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्धया।

इष्टान्देशांजलद ! विचर प्रावृषा संभृतश्री–

र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।।55।।

अन्वयः – जलद्, सौहार्दात् वा विधुरः इति वा मयि अनुक्रोशबुद्ध्या वा अनुचितप्रार्थनावर्तिनः मे एतत् प्रियं कृत्वा प्रावृषा संभृतश्रीः (त्वम्) इष्टान् देशान् विचर एवं च क्षणम् अपि ते विद्युता विप्रयोगः मा भूत्।

अनुवाद – हे मेघ, प्रेम के कारण अथवा यह दुःखी है, इसलिये मेरे प्रति दया भाव के कारण, मुझ अनुचित याचना करने वाले का यह प्रिय करके वर्षा ऋतु से बढ़ी हुई शोभा वाले (तुम) अभिलषित देशों में विचरण करना और इस प्रकार (अर्थात् मेरे समान) क्षण भर के लिये भी तेरा बिजली से वियोग न होवे।

इति उत्तरमेघः

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. उत्तरमेघ में कितने श्लोक हैं ?
2. अलकापुरी का राजा कौन था ?
3. कालिदास के गीतिकाव्य कौन–से हैं ?
4. यक्ष प्रवासकाल में कहाँ रहने लगा ?
5. मेघदूत को कितने भागों में बाँटा गया है ?

2.5 सारांश

उत्तरमेघ – 'अलका में गगनचुम्बी महल हैं जो सुन्दर ललनाओं, विविध वर्णों से बने चित्रों, संगीत में प्रहत मुरजों और माणि–जटित कुट्टिओं आदि गुणों से तुम्हारी बराबरी कर सकते हैं। वहां हमेशा नवयुवतियों के हाथ में लीला–कमल, केशों में बाल–कुन्द, मुख पर लोध्र पुष्प का पराग, जूड़े में कुरबक, कानों में शरीष और सीमन्त में कम्बन्द का फूल रहता है। वहां वृक्षों पर हमेशा फूल खिले रहते है, जिन पर भौंरे गुंजार करते रहते हैं, हमेशा चमकते हुए पंखों वाले मोर कूजते रहते है; कमलिनियों पर हमेशा कमल खिले रहते हैं, जिनके चारों ओर हंस की पंक्तियां घिरी रहती हैं और हमेशा प्रकाश के कारण गोधूलियां सुहावनी होती है। वहां आंखों में आंसू हर्ष के कारण उत्पन्न होते हैं; केवल काम–संताप ही लोगों को सताता है, केवल प्रणय–कलह में ही प्रेमियों का वियोग होता है और देवों को केवल यौवनावस्था ही रहती है। वहां यक्ष अट्टालिकाओं की माणि–जटित छतों पर जाकर उत्तम स्त्रियों के साथ मिलकर संगीत –ध्वनि के साथ कल्पद्रुम से उत्पन्न रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं। वहां कन्यायें गंगा के रेतीले तट पर मणियां छिपा–छिपा कर खेलती हैं। वहां रत्नों के द्वीप हैं; दीवारें चित्रों से सज्जित हैं और चन्द्रिका के सम्पर्क से जल–स्रावी चन्द्रकान्त मणियां स्त्रियों की सुरत–ग्लानि को हर लेती है। उसके बाह्य भाग में वैभ्राज नाम का उद्यान है, जिसमें कामीजन अप्सराओं के साथ संगीत–सुख का उपभोग करते हैं। उस नगरी में अकेला कल्प वृक्ष ही स्त्रियों की समग्र प्रसाधन–सामग्री को उत्पन्न कर देता है। वहां सूर्य के घोड़ों की बराबरी करने वाले घोड़े है, शैल के समान भीमकाय मदवर्षी हाथी हैं और वहां के योद्धा ऐसे हैं कि जिन्हें तलवार के घाव के निशान के सामने आभूषण भी अच्छे नहीं लगते।

उस अलकापुरी में कुबेर के घर से उत्तर की ओर समीप में स्थित मेरा घर है, जो इन्द्रधनुष के समान सुन्दर तोरण से दूर से ही दीख पड़ता है और जिसके पास में छोटा सा मन्दर वृक्ष है जिसे मेरी प्रिय ने पुत्र के समान पाला है, जो हाथ की पहुंच में आ सकने वाले पुष्पों के गुच्छों से झुका रहता है। इसमें मरकत–माणियों से बनाई गई सोपान पंक्ति से शोभित और सूवर्ण कमलों से आच्छन्न एक बावड़ी है जिसमें कुरबक की बाड़ से घिरा माधवीमण्डप के समीप में रक्तशोक और मौलसिरी का पेड़ है। उन दोनों के बीच में संगमरमर के फलक वाली सोने की छतरी है जिस पर सन्ध्या के समय तुम्हारा मित्र मोर बैठा करता है, जिसे मेरी प्रिया बजती हुई चूड़ियों से सुभग ताल दे–देकर नचाया करती है। द्वार के बाजुओं पर चित्र में बनाये शंख और पद्म (निधि) को देखकर और पूर्वोक्त चिह्नों को याद करके तुम मेरे घर को पहचान लेना। मेरी अनुपस्थिति में अब मेरा घर अवश्य ही शोभाहीन हो गया होगा; सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल की शोभा नहीं रहती।

शीघ्र नीचे उतरने के लिये हाथी के बच्चे का आकार धारण करके पूर्वोक्त क्रीड़ा–पर्वत के शिखर पर बैठकर तुम धीरे से अपने विद्युन्नेत्र को भवन के अन्दर डालना। उस भवन में ब्रह्मा की प्रथम स्त्री–रचना के समान, स्तन–भार से झुकी जो स्त्री हो जिसका शरीर पतला, दांत नुकीले, अधर पके बिम्ब से, कमर पतली, नेत्र चकित हरिणी के से और नाभि गहरी हो और नितम्ब भार के कारण जिसकी गति मन्द हो, उस अल्प–भाषिणी को मेरा द्वितीय प्राण समझ लेना। मुझ सहचर के विहर में उसके दिन कठिनाई से कट रहे होंगे और वह बर्फ से कुम्हलाई हुई कमलिनी–सी हो गयी होगी। निरन्तर रोने से उसके नेत्र सूज गये होंगे, गर्म आहों ने उसके होंठों की कान्ति नष्ट कर दी होगी और हाथों पर रखा हुआ उसका मुख बिखरे बालों के कारण पूरी तरह दीख भी न पड़ेगा। वह पूजा में लगी होगी अथवा मेरा चित्र बना रही होगी अथवा पिंजरे में बैठी मैना से पूछ रही होगी, ''ऐ रसिके, तुझे स्वामी की याद आती है या नहीं तू तो उसकी प्यारी थी।'' अथवा गोद में वीणा डालकर मेरे नाम वाले गीत को गाने के लिये उद्यत हुई वह आंसुओं से गीले तारों को ठीक करके स्वरचित मूर्च्छना को भी भूलती हुई तुम्हें दृष्टिगोचर होगी। वह मेरे शाप की अवधि के शेष मासों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिन रही होगी अथवा मन ही मन मेरे मिलन का आस्वादन कर रही होगी। स्त्रियों के प्रियवियोग में मनोविनोद के यही उपाय हुआ करते हैं।

तुम्हारी सखी दिन में तो काम में लगी रहती होगी, इसलिये मेरा विरह उसे अधिक न सताता होगा; परन्तु रात्रि में विनोद के अभाव में उसकी वेदना अधिक हो जाती होगी, अतः तुम उसे मेरा सन्देश अर्धरात्रि में देना जब कि वह व्याकुलता के कारण पृथ्वी पर उन्निद्र पड़ी होगी। जो रात्रियाँ उसने मेरे साथ क्रीड़ा–रत रह कर क्षण के समान व्यतीत की थीं, उन्हें अब बिस्तर पर करवटें बदलते हुये वह गर्म आंसुओं के साथ बिताती होगी। अब उसे चांद की चांदनी भी न भाती होगी और वह दुखिया अपने कृश अंगों को बड़ी कठिनाई से सम्हाले होगी; उसे देखकर तुम्हारी आंखों में भी बरबस आंसू उमड़ आयेगें।

हे भाई, तुम्हारी सखी का अपने प्रति प्रेम जानता हूं इसी से उसकी ऐसी दशा की सम्भावना कर रहा हूं। मैंने स्वयं को सुन्दर मानकर डींग नहीं मार रहा। जो मैं कह रहा हूं, उसे तुम शीघ्र ही प्रत्यक्ष देख लोगे। तुम मित्र के पहुंचने पर उसकी काजल से सूनी आंखों की ऊपर की पलकें और आभूषण रहित बाई जांघ फड़क उठेगी।

हे जलद, उस समय यदि किसी तरह उसे नींद आ गई हो तो कुछ समय चुपचाप रहकर प्रतीक्षा कर लेना, जिससे कि स्वप्न में किसी प्रकार प्राप्त हुए मुझ प्रिय के साथ उसका आलिंगन तुरन्त शिथिल न हो जाये। तुम बिजली को अपने अन्दर छिपाकर और धीर रहकर जल–कणों से शीतल पवन से उसे जगाकर अपलक दृष्टि से तुम्हें देखती हुई से इस प्रकार कहना प्रारम्भ करना, ''हे सौभाग्यवती, मुझे अपने पति का मित्र मेघ जानो, मैं उसका संदेश लेकर तुम्हारे समीप आया हूं।'' यह कहने पर वह तुम्हारे वचन को वैसे ही आदर के साथ सुनेगी जैसे सीता ने हनुमान के वचन सुने थे।

हे आयुष्मान्, मेरे कहने से और अपने जीवन को परोपकार द्वारा चरितार्थ करने के लिये उससे इस प्रकार कहना –

हे अबले, रामगिरि के आश्रमों में रहने वाले, तुमसे बिछड़ा हुआ तुम्हारा साथी जीवित है और तुम्हारा कुशल पूछता है। वह अपने क्षीण, तप्त अंगों से तुम्हारे कृतशत एवं संतप्त अंगों का संकल्प द्वारा आलिंगन करता है। जो सखियों के सामने स्पष्ट कहने योग्य बात को मेरे मुख से स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिये उत्सुक रहता था, अब दूरवर्ती उसने मेरे द्वारा यह कहा है –

''मैं प्रिसंग लताओं में तुम्हारे शरीर को, हरिणी, के नेत्रों में तुम्हारे दृष्टिपात को, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की कान्ति को, मोरों की पूंछ में तुम्हारे केश–भार को और नदियों की हल्की सी तरंगों में तुम्हारे भ्रूभंग को निहारता रहता हूं; लेकिन मुझे तुम्हारी समानता किसी एक वस्तु में भी नहीं मिलती। स्वप्न में मिल जाने पर जब मैं तुम्हारा आलिंगन करने के लिए भुजायें फैलता हूं तो वन–देवताओं के मित्रों से भी मोटे–मोटे आंसू गिरने लगते हैं। मैं उत्तर से आने वाले पवनों का इस आशा से आलिंगन करता रहता हूं कि सम्भवतः इन पवनों ने पहले तुम्हारे शरीर का स्पर्श किया होगा। मैं तुम्हारे वियोग की व्यथा से इतना पीड़ित हूं कि यही चिन्ता रहती है कि लम्बी रात कैसे बीते और दिन का ताप किस तरह कम हो; लेकिन फिर भी मैं अपने को संभाले हुए हूं। इसलिये, हे कल्याणि, तू भी कातर न हो; हमेशा सुख या दुःख किसको होता है ? मेरा शाप विष्णु के शेषशय्या से उठने पर समान्त हो जायेगा, इसलिये शेष चार महीने भी आंखें मींचकर बिता ले। इसके बाद शरद् की चांदनी रात में हम दोनों अपनी उन अभिलाषाओं को पूर्ण करेंगें जो विरह में चित्त में चढ़ी हुई हैं।''

उसने और आगे कहा है, ''पहले कभी एक बार तुम बिस्तर में मेरे गले से लगी सो रही थीं कि किसी कारण जोर से रोती हुई जाग गईं। तब मैंने तुमसे अनेक बार रोने का कारण पूछा तो तुमने मन ही मन मुस्कुराते हुए कहा था, 'अरे धूर्त,मैंने स्वप्न में तुझे किसी स्त्री के साथ रमण करते देखा है।' हे असितनयने, यह पहचान बतलाने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे प्रति शंकालु न बन। जो यह कहते हैं कि वियोग में स्नेह समाप्त हो जाता है, वह झूठ ही है; वह तो भोग के अभाव के इष्ट वस्तु के प्रति अभिलाषा को बढ़ाकर प्रेम–राशि हो जाता है।

प्रथम विरह में अत्यन्त संतप्त अपनी सखी को इस प्रकार सान्त्वना देकर शीघ्र ही कैलास से लौटकर अभिज्ञान सहित भेजे गये उसके कुशल वचन से मेरे भी प्राणों को अवलम्बन देना। हे सौम्य, तुमने मुझ मित्र का यह कार्य करना स्वीकार कर लिया है न ? मैं समझता हूं कि तुम्हारी चुप्पी अस्वीकृति के कारण नहीं है। तुम मांगने पर चातकों को चुप रहकर भी जल देते हो। प्रार्थियों का अभिलषित कार्य कर देना ही सज्जनों का उत्तर हुआ करता है। हे जलद्, प्रेम के कारण अथवा मुझे दुःखी समझकर कृपा भाव के कारण मेरा यह प्रिय करके तुम अभीष्ट देशों में जाना। मेरी शुभ–कामना है कि तुम्हारा अपनी प्रिया विद्युत से कभी क्षण भर के लिये भी वियोग न हो।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **स्निग्धगम्भीरघोषम्** – मधुर तथा गम्भीर गर्जन वाले
- **उन्मत्तभ्रमरमुखराः** – मतवाले भ्रमरों के गुंजन से युक्त
- **कल्पवृक्षप्रसूतम्** – कल्पवृक्ष से उत्पन्न
- **अमरप्रार्थिताः** – देवताओं के द्वारा चाही गई
- **सततगतिना** – निरन्तर गति वाले के द्वारा
- **स्फुटजललवस्यन्दिनः** – स्वच्छ जल के कणों को टपकाने वाली
- **सवितुः उदये** – सूर्य के उदय होने पर
- **चरणकमलन्यासयोग्यम्** – कमल के समान चरणों में लगाए जाने योग्य
- **बलिव्याकुला** – देवताओं के पूजन में व्यस्त
- **देवदारुद्रमाणाम्** – देवदारु नामक वृक्षों के

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. 55
2. कुबेर
3. ऋतुसंहार और मेघदूत
4. रामगिरि पर्वत पर
5. दो (पूर्वमेघ और उत्तरमेघ)

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. कालिदास का काव्यवैशिष्टय प्रतिपादित कीजिए।
2. उत्तरमेघ का सार लिखिए।
3. अलकापुरी का वर्णन कीजिए।
4. 'मेघदूत में प्रेम का चित्रण' विषय पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।
5. मेघदूत में वर्णित प्रकृति–वर्णन का विश्लेषण कीजिए।

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. मेघदूतम् – कालिदास, व्याख्याकार – डॉ० दयाशंकर शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2015 ई०
2. मेघदूतम् – कालिदास, सम्पादक – पं० ब्रह्मशंकरशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण वि०सं० 2059
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2003 ई०
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2016 ई०
5. संस्कृत–हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2005 ई०
6. मेघदूतम्, कालिदास – सम्पादक डॉ० संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, संस्करण 2003 ई०

इकाई – 3

शिशुपालवधम् – माघ (प्रथम सर्ग)

इकाई की रूपरेखा

3.1 परिचय

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 शिशुपालवधम् (प्रथम सर्ग)

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

3.5 सारांश

3.6 मुख्य शब्दावली

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.1 परिचय

3.1.1 माघ

महाकवि माघ आबू पर्वत के निकट राजस्थान के सिरोही जिले के अन्तर्गत श्रीमाल के भीनमाल नामक प्रसिद्ध नगर के निवासी कुमुद पण्डित (दत्तक सर्वाश्रय) नाम से प्रसिद्ध एक धनी ब्राह्मण के पुत्र थे। माघ के पितामह श्री सुप्रभदेव राजा वर्म्मल (वर्मलात) के यहाँ सर्वाधिकारी मन्त्री के पद पर आसीन थे। राजा वर्मलात संबंधी 682 सम्वत् का एक शिलालेख आबू के निकट वसन्तगढ़ से प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख के वर्ष का सम्बन्ध कुछ विद्वान् शक–सम्वत् से तथा कुछ विक्रम सम्वत् से जोड़ते हैं। राजनैतिक घटनाओं के सन्दर्भ में इस बात की पुष्टि होती है कि वर्मलात का समय 682 शक सम्वत् अर्थात् 760 ई० ही ठीक है तथा यही समय माघ के पितामह सुप्रभदेव का था। भोज के साथ माघ का सम्बन्ध होने के कारण माघ को प्रतिहारवंशी मिहिरभोज (835–895) के समय में माना जा सकता है तथा कुछ विद्वान् माघ को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मानते हैं।

महाकवि माघ कवि होने के साथ–साथ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। एक बार इन्होंने शास्त्रार्थ में नीचा देखना पड़ा था। फलस्वरूप आत्मसम्मानी कवि देशाटन को चल दिए तथा जब वे देश–विदेश के भ्रमण से लौटे तो उन्होंने शिशुपालवध नामक महाकाव्य का निर्माण करके वृद्धावस्था में अपनी कीर्ति को पुनः प्राप्त किया। माघ दानी भी बहुत थे तथा इनका बहुत–सा धन दान में ही समाप्त हो जाता था। या तो इनकी यह अवस्था होती थी कि स्वयं राजा इनके द्वार पर आश्रय के लिए ठहरा करते थे या ये स्वयं दाने –दाने के लिए तरस रहे होते थे। प्रबन्ध चिन्तामणि एवं प्रभावकचरित से माघ के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। शिशुपालवध महाकाव्य के चतुर्दश, पंचदश तथा एकोनविंश सर्गों के कुछ श्लोकों में कवि ने श्लेष के माध्यम से अपने आश्रयदाता आदिबराह भोज का ही बार–बार स्मरण किया है। एकोनविंश सर्ग के अन्त में माघ ने एक प्रशस्ति के द्वारा अपने पिता तथा पितामह आदि के नाम तथा कार्यों का संकेत दिया है।

रचना – माघ की केवल एक ही कृति 'शिशुपालवध महाकाव्य' प्राप्त होती है इस एक कृति से ही माघ कवि का नाम संस्कृत–साहित्य के अमर रत्नों में महत्त्वपूर्ण माना जाता हैं।

3.1.2 शिशुपालवध

'बृहत्त्रयी' में अन्यतम 'शिशुपालवध' महाकवि माघ की एकमात्र कृति होने पर भी माघ की प्रतिभा तथा कला–कौशल के प्रदर्शन में सर्वथा समर्थ है। 20 सर्गों तथा 1650 छन्दों (पद्यों) से समन्वित इस ग्रन्थ की उपजीव्यता का श्रेय 'महाभारत' को प्राप्त है। स्पष्टतः यह कथानक महाभारत के सभापर्व (अध्याय 35–43) से लिया गया है। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण के द्वारा 'शिशुपाल' का वध ही इस काव्य का प्रधान वर्ण्य–विषय है। इसका अंगी–रस 'वीर' है, जबकि शृंगार एवं हास्यादि गौण रस है। महाकवि माघ ने महाभारत की अत्यल्प कथा को अपनी कवि प्रतिभा के बल पर भली–भाँति सजा–सँवार कर एक भव्य–काव्य–प्रासाद के रूप में उपस्थापित किया है।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है – **प्रथम सर्ग** में देवर्षि नारद का द्वारका में आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों तथा उसके अत्याचारों का वर्णन, श्रीकृष्ण को इन्द्र का सन्देश सुनाना एवं उन्हें शिशुपाल को मारने के लिए प्रेरित करना, **द्वितीय सर्ग** में श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव की मन्त्रणा, बलराम का शिशुपाल पर आक्रमण का प्रस्ताव किन्तु उद्धव का नीतिपूर्ण प्रस्ताव कि इस विषय में शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सेना–सहित भाग लें, **तृतीय सर्ग** में द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान; नगरी, सेना और समुद्र का वर्णन, **चतुर्थ सर्ग** में रैवतक पर्वत का वर्णन, **पंचम सर्ग** में रैवतक पर सैन्य–शिविर की स्थापना, **षष्ठ सर्ग** में छह ऋतुओं का द्रुतविलम्बित छन्द में 'यमक' का निवेश करते हुए वर्णन, **सप्तम सर्ग** में वन–विहार का वर्णन, **अष्टम सर्ग** में जलक्रीड़ा का वर्णन, **नवम सर्ग** में सन्ध्या, चन्द्रोदय तथा शृंगार– विधान का वर्णन, **दशम सर्ग** में पान–गोष्ठी एवं रात्रि–विहार का वर्णन, **एकादश सर्ग** में प्रभात का वर्णन, **द्वादश सर्ग** में श्रीकृष्ण का पुनःप्रस्थान तथा यमुना नदी का वर्णन, **त्रयोदश सर्ग** में श्रीकृष्ण एवं पाण्डवों का मिलना, नगर–प्रवेश तथा दर्शक नारियों की चेष्टाओं का, अश्वघोष तथा कालिदास से प्रतिस्पर्धा करते हुए, वर्णन, **चतुर्दश सर्ग** में युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा तथा भीष्म द्वारा उनकी स्तुति, **पंचदश सर्ग** में शिशुपाल का कोप तथा उसके पक्ष के राजाओं का युद्ध के लिए सन्नद्ध होना, **षोडश सर्ग** में शिशुपाल के दूत द्वारा श्रीकृष्ण के समक्ष उभयार्थक शब्दों का प्रयोग, सात्यकि का उत्तर, दूत द्वारा पुनः शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन करना, **सप्तदश सर्ग** में श्रीकृष्ण के पक्ष के राजाओं का कोप, सेना की प्रस्तुति और प्रस्थान, **अष्टादश सर्ग** में सेनाओं का घोर युद्ध, **एकोनविंश सर्ग** में चित्रालंकर से पूर्ण पद्यों के द्वारा व्यूह–रचना एवं विचित्र युद्ध का वर्णन तथा **विंश सर्ग** में श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र–युद्ध, दिव्यास्त्र–युद्ध एवं वाग्युद्ध; शिशुपाल के अपशब्दों से कुपित श्रीकृष्ण द्वारा सुदर्शनचक्र से शिशुपाल का शिरश्छेदन एवं शिशुपाल के तेज का विजयी कृष्ण में प्रवेश का निरूपण किया गया है।

3.1.3 माघ की भाषाशैली या "माघे सन्ति त्रयो गुणाः"

महाकवि भारवि के ही समान महाकवि माघ की भी शैली अलंकृत–कलापक्ष– प्रधान–शैली है। ठीक भारवि के ही समान ये भी चित्रकाव्य–निरूपण में निपुणता प्रदर्शित करते हैं। इन्होंने एक पद्य ऐसा लिखा है, जिसमें एकमात्र वर्ण 'दकार' का प्रयोग हुआ है –

"ददादो दुद्ददुद्दी दादादो दूरदीददोः।

दुद्दं ददे दुद्दे दादाऽददददोऽददः।।" शिशुपालवधम् 19/144

पाण्डित्य–प्रदर्शन के क्षेत्र में महाकवि माघ का अपना विशिष्ट स्थान है। मानो नए और जटिल शब्दों के प्रयोग का उन्हें एक व्यसन था। महाकवि माघ की प्रतिभा के पारखी आलोचक एक–स्वर से कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगाम्भीर्य तथा दण्डी का पदलालित्य; इन तीनों के मंजुल–समन्वय को ही 'माघ' की महिमा का

मापदण्ड मानते हैं अर्थात् उपमा, अर्थगौरव एवं पदलालित्य; महाकवि माघ के काव्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि माघ उन तीनों कवियों से बढ़कर है। यदि वे कवि अपनी विशिष्टताओं से सम्पन्न हैं तो माघ इनका समन्वय करते हैं।

इसके बाद भी किसी वर्णन को विशेषरूप से अलंकृत करने की कला, महाकवि माघ की अपनी व्यक्तिगत–विशेषता है। प्रत्येक वर्णन तथा प्रत्येक भाव साधारण शब्दों में न होकर अलंकारों से विभूषित भाषा में प्रकट किया गया है। इस रहस्य से अनभिज्ञ आलोचक उनके काव्य में कृत्रिमता के दर्शन करते हैं; जो सर्वथा अनुचित है। सच तो यह है कि माघ का काव्य कृत्रिम नहीं, अपितु अलंकृत है। वह युग ही पाण्डित्य– प्रदर्शन का युग था। सामान्य–पाठकों को रिझाना, कविकर्म की कसौटी नहीं थी, अपितु शास्त्रवेत्ता विद्वानों के हृदय में किसी तत्त्व को पूर्णतः उतारना ही, कवि का मुख्य प्रयोजन था उस समय की यही माँग थी। उस युग का यही धर्म था। फलतः महाकवि माघ ने भी उसी धर्म का अनुसरण किया।

3.2 इकाई के उद्देश्य

- महाकविमाघ की काव्यप्रतिभा की विवेचना कर सकेंगे;
- शिशुपाल के चरित्र के विषय में विस्तारपूर्वक समझ पाएंगे;
- शिशुपालवध के प्रथम–सर्ग की कथावस्तु का विश्लेषण कर पाएंगे;
- कृष्ण के चरित्र से अवगत हो पाएंगे;
- शिशुपाल के पूर्वजन्मों की विवेचना कर पाएंगे।

3.3 शिशुपालवधम् (प्रथम सर्ग)

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।

वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भांगभुवं मुनिं हरिः।।1।।

अन्वयः – श्रियः पतिः जगन्निवासः जगत् शासितुं श्रीमति वसुदेवसद्मनि वसन् हरिः अम्बरात् अवतरन्तं हिरण्यगर्भांगभुवं मुनिं ददर्श।

अनुवाद – समस्त संसार को शासित करने के लिए वसुदेव के घर में निवास करते हुए, जगत् के आश्रयभूत तथा लक्ष्मी के पति भगवान् श्रीकृष्ण ने आकाश से (नीचे की ओर) उतरते हुए ब्रह्म–पुत्र नारदमुनि को देखा।

गतं तिरश्चीनमनूसारथेः प्रसिद्धमूर्ध्वज्वलनं हविर्भुजः।

पतत्यधो धामविसारि सर्वतः किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः।।2।।

अन्वयः – अनुरुसारथेः = गतं तिरश्चीनं प्रसिद्धम्। हविर्भुजः ऊर्ध्वज्वलनं (प्रसिद्धम्)। सर्वतः विसारि (इदं) धाम अधः पतति। एतद् किम् ? इति जनैः आकुलं (यथास्यात्तथा) ईक्षितम्।

अनुवाद – सूर्य की गति तिरछी होती है एवं अग्नि का ऊपर की ओर प्रज्वलित होना प्रसिद्ध हैं, परन्तु चारों ओर फैलने वाला यह तेज नीचे की ओर आ रहा है। यह क्या है? इस आश्चर्य के कारण सभी द्वारकावासी लोगों ने व्याकुलता के साथ उस तेज को देखा।

चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा ततः शरीरीति विभावितकृतिम्।

विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः।।3।।

अन्वयः – विभुः सः पुरात्विषां चयः इति, ततः विभावितकृतिं शरीरी इति, विभक्तावयवं पुमान् इति अवधारितम् अमुं क्रमात् नारदः इति अबाधि।

अनुवाद – सर्वव्यापक भगवान् श्री कृष्ण ने सर्वप्रथम उसे 'यह तेजपुंज है' ऐसा निर्णय किया, तदनन्तर हाथ–पैर आदि के कुछ धुन्धले रूप में दिखलायी देने पर उसे 'यह शरीरधारी है' ऐसा निर्णय किया, अवयवों के स्पष्ट होने पर 'यह पुरुष है' ऐसे निर्णय किया एवं इस प्रकार क्रमशः 'ये नारद हैं' ऐसा जाना।

नवानधोऽधो बृहतः पयोधरान् समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्।

क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना।।4।।

अन्वयः – नवान् बृहतः पयोधरान् अधः अधः (स्थितं) समूढकर्पूरपरागपाण्डुरं क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना भूतिसितेन शम्भुनां स्फुटोपमम् (अमुम्)।

अनुवाद – नवीन अतएव जलपूर्ण होने से कृष्ण वर्णवाले, बड़े–बड़े बादलों के नीचे एकत्र किए गए कपूर के चूर्ण के समान श्वेत वर्ण वाले तथा ताण्डव के समय अपने ऊपर हाथी के चर्म को ओढ़े हुए तथा भस्म पोतने से शुभ्र वर्ण वाले शंकर के समान प्रतीत होने वाले (नारद मुनि को भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा)।

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।

विपाकपिंगास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव।।5।।

अन्वयः – अम्भोरुहकेसरद्युतीः जटाः दधानं, शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम् (अतएव) विपाकपिंगा तुहिनस्थलीरुहः व्रततीततीः (दधानं) धराधरेन्द्रम् इव (अमुम्)।

अनुवाद – कमल–केसर के समान कान्तिवाली जटाओं को धारण करते हुए एवं शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान कान्तिवाले अतएव परिपाक से पतिवर्ण, बर्फीली भूमि में उत्पन्न लता–समूहों को धारण करते हुए पर्वतराज हिमालय के समान प्रतीत होने वाले (नारदमुनि को श्रीकृष्ण भगवान् ने देखा)।

पिशंगमौंजीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमंजनद्युति।

सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्।।6।।

अन्वयः – पिशंगमोंजीयुजम्, अंजनद्युति एणाजिनं वसानम्, अर्जुनच्छविम् (अतएव) सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां शितिवाससः तनुं विडम्बयन्तम् (अमुम्)।

अनुवाद – पीली मूँज की करधनी पहने हुए एवं शुभ्रवर्ण और काले मृगचर्म को धारण किए हुए अतएव सोने की करधनी से बँधी हुई नीली धोती वाले (शुभ्रवर्ण) बलराम के शरीर का अनुकरण करते हुए (नारद मुनि को श्रीकृष्ण भगवान् ने देखा)।

विहंगराजांगरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।

कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितांगणैरिव।।7।।

अन्वयः – विहंगराजांगरुहैः इव आयतैः हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः कृतोपवीतं हिमशुभ्रम् (अतएव) घनान्ते तडितां गणैः (उपलक्षितम्) उच्चकैः घनम् इव (अमुम्)।

अनुवाद – पक्षीराज गरुड के केशों के समान लम्बे, स्वर्णमयी भूमि में उत्पन्न लतातन्तुओं से निर्मित यज्ञोपवीत को धारण किए हुए एवं बर्फ के समान अत्यन्त शुभ्र वर्ण वाले वर्षा के बाद में बिजली के समूह से युक्त मेघ के समान स्थित (नारदजी को श्रीकृष्ण भगवान् ने देखा)।

निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लद्बिसच्छेदसितांगसंगिना।

चकासतं चारुचमूरुचर्मणा कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्।।8।।

अन्वयः – निसर्गचित्रोज्ज्वलसूक्ष्मपक्ष्मणा लसद्बिसच्छेदसितांगंगिना चारुचमूरुचर्मणा चकासतम् (अतएव) कुथेन इन्द्रावाहनं नागेन्द्रम् इव (अमुन नारद इत्यबोधि)।

अनुवाद – स्वभावतः चितकबरे एवं उज्ज्वल रोमवाले, शोभमान कमलनाल के खण्ड के समान शुभ्रवर्णवाले शरीर पर स्थित चमूर मृग के चर्म से, (ऐरावत के शरीर पर डाले हुए) झूल से इन्दवाहन गजराज ऐरावत के समान शोभित होते हुए (नारदजी को श्रीकृष्ण भगवान् ने देखा)।

अजस्रमास्फालितवल्लकीगुणक्षतोज्ज्वलांगुष्ठनखांशुभिन्नया।

पुरः प्रवालैरिव पूरताऽर्धया विभान्तमच्छस्फटिकाक्षमालया।।9।।

अन्वयः – अजस्रम् आस्फालितबल्लकीगुणक्षनोज्ज्वलांगुष्ठनखांशुभिन्नया (अतएव) पुरः प्रवालै पूरितार्धया इव अच्छस्फटिकाक्षमालया विभान्तम् (अमुम्)।

अनुवाद – निरन्तर बजाये गए वीणा के तारों से क्षत होने (घिसने) के कारण स्वभावतः उज्ज्वल अँगूठे के नख की कान्ति से मिली हुई (अतएव) मूंगों से आधे भाग में परिपूर्ण–सी स्वच्छ स्फटिक माला से शोभित होते हुए (नारद जी को भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा)।

रणद्विराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।

स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहः।।10।।

अन्वयः – नभस्वतः आघट्टनया पृथक रणद्विः विभिन्नश्रुतिमण्डैः स्वरैः स्फुटीभवद्ग्रामविशेष –मूर्च्छनां महतीं मुहः मुहः अवेक्षमाणम् (अमुं नारदं इत्यबोधिः)।

अनुवाद – वायु के आघात से पृथक्–पृथक् ध्वनित होने वाले विभिन्न श्रुति समूहों वाले स्वरों के द्वारा ग्रामों की विशिष्ट मूर्च्छनाएँ जिससे स्पष्ट रूप से निकल रही थीं, ऐसी महती नाम की वीणा को बार–बार देखते हुए (नारद जी को भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा)।

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभः सदः।

समासदत्सादितदैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारुचक्रिणः।।11।।

अन्वयः – अतीन्द्रियाननिधिः सः कृतानतीन् अनुव्रजतः नभः सदः निवर्त्य सादितदैत्य– सम्पद, चक्रिणः महेन्द्रालयचारु पदं समासदत्।

अनुवाद – अतीन्द्रिय ज्ञान (परोक्ष–ज्ञान) के भण्डार देवर्षि नारद प्रणाम करके कुछ दूर पीछे–पीछे चले आ रहे देवताओं को लौटाकर दैत्यों की सम्पत्ति को नष्ट करने वाले भगवान् श्री कृष्ण के, इन्द के समान सुन्दर निवास–स्थान (द्वारिकापुरी) पर पहुँचे।

पतत्पतंगप्रतिमस्तपोनिधिः पूरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत्।

गिरेस्तडित्वानिव तादुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः।।12।।

अन्वयः – पतप्पतंगप्रतिमः तपोनिधिः अस्य पुरः भुवि यावत् न व्यलीयत् तावद् अच्युतः गिरेः तडित्वान् इव उच्चकैः पीठात् जवेनं उदतिष्ठत्।

अनुवाद – (आकाश से) गिरते हुए सूर्य के समान तपस्वी नारदमुनि भगवान् श्रीकृष्ण के सामने पृथ्वी पर आकर

स्थित (भी) नहीं हुए थे कि तब तक श्रीकृष्ण भगवान् पर्वत के मेघ के समान अपने उच्चासन (सिंहासन) से उठकर खड़े हो गए।

अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथंचित्फणिनां गणैरधः।

न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले।।13।।

अन्वयः – अथ धातुः सुतेन प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैः फणिनां गणैः अधः कथंचिद् धृते भुवः तले अभिदेवकीसुतं चरणौ न्यधायिषाताम्।

अनुवाद – इसके पश्चात् ब्रह्मा के पुत्र नारद मुनि ने भूतल पर श्रीकृष्ण भगवान् के सामने अपने दोनों चरणों को रखा। (जिनके भार से) प्रयत्न पूर्वक ऊपर उठने पर भी नीचे झुके हुए फणों वाले सर्प समूह ने नीचे से किसी प्रकार (पृथ्वी के भार को) धारण किया।

तमर्ध्यमर्ध्यादिकयाऽऽदिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।

गृहानुपैतु प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।।14।।

अन्वयः – आदिपुरुषः सः अर्ध्यतम् अर्ध्यादिकया सपर्यया साधु पर्यपूपुजत्। मनीषिणः अपुण्यकृतां गृहान् प्रणयात् उपैतुम अभीप्सवः न भवन्ति।

अनुवाद – आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्घ्य आदि पूजा सामग्रियों से पुज्य उस नारद मुनि की विधिपूर्वक पूजा की (भगवान् श्रीकृष्ण का यह कार्य उचित भी था। क्योंकि महात्मा लोग अपुण्यात्माओं के घर पर प्रेम से आना नहीं चाहते हैं।

नयावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषारांजनपर्वताविव।

स्वहस्तदत्त मुनिमासने मुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत्।।15।।

अन्वयः – जनः उत्थितौ एतौ तुषारांजनपर्वतौ इव यावत् न उदपश्यत्, तावत् चिरन्तनः मुनिः स्वहस्तदत्ते आसने मुनिम् अभिन्यवी विशत्।

अनुवाद – (वहाँ पर उपस्थित) लोग हिमालय तथा नीलगिरि के समान खड़े हुए इन नारदमुनि एवं भगवान् श्रीकृष्ण को जबतक देख भी नहीं पाए थे तब तक प्राचीन मुनि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से दिए हुए आसन पर नारद मुनि को बैठा दिया।

महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे।

श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्।।16।।

अन्वयः – महामहानीलशिलारुच कंसकृषः पुरः उच्चकैः पुरः उच्चकैः विष्टरे निषेदिवान् सः अभिसायं श्रितोदयाद्रेः चन्द्रमसः अभिरामताम् अचूचुरत्।

अनुवाद – महान् इन्द्रनीलमणि के समान कान्ति वाले श्रीकृष्ण भगवान् के सामने ऊँचे आसन पर बैठे हुए नारद मुनि ने उदयगिरि पर स्थित सांयकालीन चन्द्रमा की शोभा को चुरा लिया।

विधाय तस्याऽपचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।

ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः।।17।।

अन्वयः – प्रमेदुषः तस्य अपचितिं विधाय यज्वनां प्रियः प्रकामम् अप्रीयत। महानुभावाः हि आर्चान् परिचर्यया मृहुः ग्रहीतुं नितान्तं अर्थिनः (भवन्ति)।

अनुवाद – विधिवत् यज्ञकर्ताओं के प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण प्रसनचित्त नारदमुनि की पूजाकर अत्यन्त हर्षित हुए, क्योंकि सज्जन पुरुष पूज्यजनों को अपनी सेवा के द्वारा पुनः–पुनः वश में करने के लिए सर्वदा इच्छुक रहते हैं।

अशेषतीर्थोपहृता कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाऽभ्युदीरिताः।

अघौघविध्वंसविधौ पटीसयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः।।18।।

अन्वयः – अशेषतीर्थोपहृता कमण्डलोः पाणौ निधाय ऋषिणा अभ्युदीरिता अघौघविध्वंस– विधौ पटीयसीः अपः हरि नतेन मूर्ध्ना अग्रहीत्।

अनुवाद – भगवान् श्रीकृष्ण ने समस्त तीर्थों से लाए गए, कमण्डल से निकाल कर हथेली पर रखकर नारदमुनि के द्वारा छिड़के गए एवं पाप समूह को नष्ट करने में अत्यन्त समर्थ जल को नतमस्तक होकर स्वीकार किया।

स कांचने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामतनुर्न्यविक्षत।

जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृंगस्य तदा तदासनम्।।19।।

अन्वयः – नवाम्बुदश्यामतनु सः मुनेः अनुज्ञया कांचने यत्र न्यविक्षत्, तत् आसनं तदा जम्बूजनितश्रियः सुमेरुशृंस्य श्रियं जिगाय।

अनुवाद – नए काले बादल के समान श्याम वर्ण के शरीर वाले श्रीकृष्ण भगवान् नारदमुनि की आज्ञा से जिस स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठे, उस समय उस आसन ने काले जामुन के फलों से सुशोभित सुमेरु पर्वत की चोटी की शोभा को भी जीत लिया था।

स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलांछनच्छविः।

विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः।।20।।

अन्वयः – तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलांछनच्छविः सः वाडवजानवेदसः शिखाभिः आश्लिष्टः अम्भसां निधिः इव विदिद्युते।

अनुवाद – तपाए गए सुवर्ण के समान देदीप्यमान पीताम्बरवाले तथा स्वयं पूर्ण चन्द्र के लांछन के समान श्याम कान्तिवाले भगवान् श्रीकृष्ण वडवाग्नि की पीतवर्ण ज्वालाओं से आवृत समुद्र के समान सुशोभित हुए।

रथांगपाणेः पटलेन रोचिषामृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।

चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरोस्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः।।21।।

अन्वयः – रथांगपाणेः रोचिषां पटलेन संवलिताः ऋषिरिवषः नक्तं तरोः चलत्पलाशान्तरगोचरा तुषारमूर्ते अंशवः इव विरेजिरे।

अनुवाद – श्रीकृष्ण भगवान् की (श्याम वर्ण) किरणों के समूह से मिश्रित नारदमुनि की (शुभ्र वर्ण) किरणें, रात्रि में वृक्ष के चंचल पत्तों के बीच में से भूमि पर पड़ने वाली चन्द्र किरणों के समान सुशोभित हो रही थी।

प्रफुल्लतापिच्छनिर्भरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः।

परस्परेणच्छुरिताऽमलच्छवो तदैकवर्णाविव तौ बभूवतुः।।22।।

अन्वयः – प्रफुल्लतापिच्छनिभैः सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः शुभैः अभीषुभिः परस्पररेणछुरिता– मलच्छवी तौ तदा एकवर्णौ इव बभूवतुः।

अनुवाद – खिले हुए तमाल पुष्प के समान (श्यामल) तथा सप्तच्छद (छितवन) के पराग के समान पाण्डु (श्वेत) शुभ किरणों से परस्पर में मिश्रित हुई कान्तिवाले श्रीकृष्ण और नारदमुनि मानों एक रंग के हो गए।

युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकासमासत्।

तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः।।23।।

अन्वयः – युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनः कैटभद्विषः यस्यां तनौ जगन्ति सविकासम् आसत् तत्र तपोधनाभ्यागमसम्भवाः मुदः न ममुः।

अनुवाद – युगों की समाप्ति के समय (प्रलयकाल) में समस्त जीवों को अन्तर्भूत करने वाले कैटभारि (श्रीकृष्ण भगवान्) के जिस शरीर में चौदह भुवन विस्तार के साथ रहते थे, उसी श्रीकृष्ण भगवान् के शरीर में तपस्वी नारद के आगमन से उत्पन्न आनन्द न समा सका।

निदाधधामानमिवाधिदीधितिं मुदा विकास मुनिमभ्युपेयुषी।

विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी सपुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्।।24।।

अन्वयः – निदाधधामानम् इव अधिदीधितिं मुनिम् अभि मुदा विकासम् उपेयुषी अधिश्रित– श्रिणी विलोचने विभ्रत् सः पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटः अभवत्।

अनुवाद – सूर्य के समान परम तेजस्वी महर्षि नारदमुनि के सामने हर्ष से विकसित नेत्रद्वय को धारण करते हुए वे भगवान् श्रीकृष्ण वस्तुतः 'पुण्डरीकाक्ष' (कमलनेत्र) हो गए।

सितं सितिम्ना सुतरां मुनेर्वपुर्विसारिभिः सौधमिवाऽथ लम्भयन्।

द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः शुचिस्मितां वाचमवोचदच्युतः।।25।।

अन्वयः – अच्युतः विसारिभिः द्विजावलिव्याजनिशाकरांशुभिः सितं मुनेः वपुः सौधम् इव सुतरां सितिम्ना लम्भयन् शुचिस्मितां वाचम् अवोचत्।

अनुवाद – इसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान् चारों ओर फैलने वाली दन्तपंक्ति के बहाने चन्द्रमा की किरणों से स्वभाव से ही शुभ्र नारदमुनि के शरीर को राजमहल के समान और अधिक शुभ्रत्व प्रदान करते हुए पवित्र एवं मन्द मुस्कान से युक्त वचन नारदमुनि से बोले।

हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।

शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्।।26।।

अन्वयः – भवदीयदर्शनं शरीरभाजां कालत्रितये अपि योग्यतां व्यनक्ति। सम्प्रति अघं हरति। एष्यतः शुभस्य हेतुः। पूर्वाचरितैः शुभैः कृतम्।

अनुवाद – आपका दर्शन तीनों कालों में शरीरधारियों की पवित्रता को प्रकट करता है। क्योंकि इस समय पाप का हरण करता है एवं भविष्य में कल्याण का हेतु है तथा भूतकाल में किए हुए पुण्यों के द्वारा (यह आपका दर्शन) प्राप्त हुआ है।

जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।

प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः।।27।।

अन्वयः – जगति अपर्याप्तसहस्रभानुना यत् तमः नियन्तुं न समभावि अदः अनुत्तमं तमः असंख्यतां गतै तेजाभिः प्रसह्य त्वया नुन्नम्।

अनुवाद – संसार में अपरिमित सहस्रों किरणों वाला सूर्य जिस अन्धकार को दूर करने में समर्थ नहीं हो सका। उसी सर्वोत्कृष्ट अज्ञान रूप अन्धाकार को आपने अगणित ज्ञानरूप तेजों के द्वारा बलपूर्वक नष्ट कर दिया।

कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा सुपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।

सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसम्पदामिव।।28।।

अन्वयः – प्रजाक्षेमकृता सुपात्रनिक्षेप – निराकुलात्मा प्रजासृजा त्वं धन–सम्पदाम् इव श्रुतीनां सदा उपयोगेऽपि गुरु अक्षयः निधिः कृतः।

अनुवाद – अपनी सन्तान का कल्याण चाहने वाला पिता जिस प्रकार सुदृढ़ पात्र में धन सम्पत्ति को रखकर निश्चिन्त हो जाता है वैसे ही प्रजापति ब्रह्मा भी आपको (वेद– सम्प्रदाय की रक्षा के लिए) अध्ययन–अध्यापन में सदा उपयोग करते रहने पर भी कभी क्षय नहीं होने वाला वेदों का अनन्त निधि बनाकर सदा के लिए निश्चिन्त हो गए।

विलोकनेनैव तवामुना मुनेः कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांऽहसा।

तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसीगिरोऽथवा श्रेयसि केन तृष्यते।।29।।

अन्वयः – मुन निबर्हितांडहसा अमुना तव विलोकनेन एव कृताथः कृत अस्मि तथापि अहं गरीयंसीः तव गिरः शुश्रूषुः अस्मि। अथवा श्रेयसि केन तृप्यते।

अनुवाद – हे नारदमुनि जी ! आपके पाप विनाशक इस दर्शन से ही मैं कृतार्थ हो गया हूँ, तथापि मैं आपके कल्याणकारी वचनों को सुनना चाहता हूँ क्योंकि मंगल के विषय में कौन सन्तुष्ट होता है ? अर्थात् कोई नहीं।

गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।

तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्।।30।।

अन्वयः – गतस्पृहः अपि आगमन प्रयोजन वद इति वक्तुं यया व्यवसीयते तां न धृष्टताम् उदितात्मगौरवः गुरुः एषः तव आगमः तनोति।

अनुवाद – निस्पृह रहते हुए भी आप आने का कारण बताइए, यह कहने के लिए जो धृष्टता मुझे उद्यत कर रही है, हमारी उस धृष्टता को मेरे आत्म गौरव को कहने वाला आपका शुभकारी आगमन ही बढ़ा रहा है।

इति ब्रु वन्तं तमुवाच स व्रतीं न वाच्यमित्थं पुरुषोत्तम त्वया।

त्वमेव साक्षात्करणीय इत्यतः किमस्ति कार्य गुरुयोगिनामपि।।30।।

अन्वयः – इति ब्रुवन्तम् तं : व्रती उवाच, पुरुषोत्तम त्वया इत्थं न वाच्यम्। योगिनाम् अपि त्वम् एव साक्षात् करणीयः इत्यतः गुरु कार्यं किम् अस्ति।

अनुवाद – इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण से नारदमुनि बोले – हे पुरुषोत्तम ! आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि योगियों के द्वारा भी आप ही का साक्षात्कार किया जाता है, इसलिए आपके दर्शन से बढ़कर कार्य और क्या हो सकता है ?

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गम्।

उपेयुषो मोक्षपयं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया।।32।।

अन्वयः – उदीर्णरागप्रतिरोधकम् अभीक्ष्णम् अक्षुण्णतया जनैः अतिदुर्गमं मोक्षपथम् उपेयुषः मनस्विनः त्वं निरपायसंश्रया अग्रभूमिः।

अनुवाद – बढ़ा हुआ विषयानुराग ही जिसमें बाधक है तथा जो लोगों से अनभ्यस्त होने से अत्यन्त दुर्गम है, उस मोक्ष मार्ग को पाए हुए मोक्षार्थी पुरुष के लिए आप ही पुनरावृत्ति से रहित आश्रय वाले प्राप्तव्य स्थान हैं।

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथंचन।

बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।।33।।

अन्वयः – पुराविदः त्वां निगृहीतमानसैः अध्यात्मदृशा कथंचन् गृहीतम् उदासितारं बहिविकार प्रकृतेः पृथक् पुरातनं पुरुषं विदुः।

अनुवाद – (हे श्रीकृष्ण !) प्राचीन काल में तत्त्वों के ज्ञाताओं ने अपने मन को वश में करके अध्यात्म दृष्टि से, किसी प्रकार आपका साक्षात्कार किया और आपको सर्वथा उदासीन, महत्तत्त्व आदि विकारों तथा मूल प्रकृति से भिन्न पुरातन पुरुष माना है।

निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।

जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरः सु भूतलम्।।34।।

अन्वयः – जगत्त्रयैकस्थपतिः त्वं हेलया उद्धृतं फणाभृताम् ओकसः एकं छादनं भूतलम् उच्चकैः अहीश्वरस्तम्भशिरःसु निवेशयामासिय।

अनुवाद – तीनों लोकों के कारीगर आप अनायास उठाये गए, सर्पों के घर (पाताल) के एकमात्र आवरण भूतल को ऊँचे सर्पराज (शेषनाग) रूपी खम्भों के मस्तक पर रख दिया था।

अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमाऽवगम्यते।

मनुष्यजन्माऽपि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः।।35।।

अन्वयः – अनन्यगुवाः तव पुराणमूर्तेः केवलः महिमा केन अवगम्यते। मनुष्यजन्मा अपि भवान् भवछेदकरैः गुणैः सुरासुरान् अधः करोति।

अनुवाद – सर्वाधिक गुरु आपकी पुराण मूर्ति की सम्पूर्ण महिमा किसके द्वारा जानी जा सकती है ? अर्थात् किसी के द्वारा नहीं। मनुष्य जन्मा होकर भी आप सांसारिक कष्टों को दूर करने वाले गुणों से सुरों तथा असुरों को तिरस्कृत कर रहे हैं।

लघूकरिष्यन्नतिभारभंगुरामूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।

उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया।।36।।

अन्वयः – त्वम् अतिभारभंगुराम् अमूं लघूकरिष्यन् त्रिदिवाद् अवातरः किल। साम्प्रतम् उदूढलोकत्रितयेन त्वया धरित्री गुरुः क्रियतेतराम्।

अनुवाद – वस्तुतः आप (दुष्टों के) अत्यन्त भार से छिन्न–भिन्न होती हुई इस पृथ्वी को हल्का बनाने के लिए स्वर्ग से अवतरित हुए परन्तु इस समय तीनों लोकों को धारण करने वाले आपके द्वारा पृथ्वी और भी अधिक भार से बोझिल (पक्षान्तर में – पूज्य) की जा रही है।

निजौजासोज्जासयितु जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि।

समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीशमादृशाम्।।37।।

अन्वयः – ईश निजौजसा जगद्द्रुहाम् उज्जासयितुं यदि महीतलं न उपाजिहीथाः ततः समाहितैः अपि अनिरूपितः (त्वं) मादृशां दृशः पदं कथं स्याः।

अनुवाद – आप यदि अपने बल से लोकद्रोही (कंसादि) का नाश करने के लिए पृथ्वी पर अवतार नहीं लिए होते तो

हे प्रभो ! समाहित चेतना योगियों के द्वारा भी अगम्य आपका दर्शन हम जैसे लोगों को कैसे हो सकता था अर्थात् कभी नहीं हो सकता था।

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर विश्वमीशिषे।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः।।38।।

अन्वयः – विश्वम्भर, मदोद्धतैः उपप्लुतम् अदः विश्वं पातुं त्वम् एव ईशिषे। क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः क्षालयितुं रवेः ऋते कः क्षमेत।

अनुवाद – हे संसार के पालन कर्त्ता ! मदोन्मत दानवों से पीड़ित इस संसार की रक्षा करने में आप ही समर्थ है। क्योंकि रात्रि के अन्धकार–समूह से मलिन आकाश को स्वच्छ करने के लिए सूर्य के अतिरिक्त कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

करोति कंसादिमहीभृतां वधाद् जनो मृगाणामिव यत्तवस्तवम्।

हरे, ! हिरण्याक्षपुरःसुरासुरद्विपद्विषः प्रत्युत सा तिरस्क्रिया।।39।।

अन्वयः – जनः मृगाणामिव कंसादिमहीभृतां वधात् यत् (तव) स्तवै करोति, हरे ! सा हिरण्याक्षपुरःसुरासुरद्विपद्विषः तव प्रत्युत तिरस्क्रिया (अस्ति)।

अनुवाद – हे कृष्ण ! मृगों के समान कंस आदि राजाओं का वध करने से लोग जो आपकी प्रशंसा करते हैं, वह हिरण्याक्ष आदि असुर रूपी हाथियों को मारने वाले आपका तिरस्कार है।

प्रवृत्त एव स्वयमुज्झितश्रमः क्रमेण पेष्टुंभुवनद्विषामसि।

तथापि वाचालतया युनक्ति मां मिथस्त्वदाभाषणलोलुपं मनः।।40।।

अन्वयः – उज्झितश्रमः (त्वम्) क्रमेण भुवनद्विषां पेष्टुं स्वयम् एव प्रवृत्तः असि, तथापि मिथः त्वदाभाषणलोलुपं मनः मां वाचालतया युनक्ति।

अनुवाद – थकान (की चिन्ता) को छोड़कर आप क्रम से संसार से द्वेष करने वाले दृष्टों को मारने के लिए स्वयं ही प्रवृत हो रहे हैं। तथापि एकान्त में आपसे बातचीत करने के लिए लालची मेरा मन मुझे वाचाल बना रहा है अर्थात् वार्तालाप के लिए प्रेरित कर रहा है।

तदिन्द्रसन्दिष्टमुपेन्द्र यद्वचः क्षणं मया विश्वजनीनमुच्यते।

समस्तकार्येषु गतेन धुयतामहिद्विषस्तद्भवता निशम्यताम्।।41।।

अन्वयः – तत् उपेन्द्र, इन्द्रसन्दिष्ट विश्वजनीन यद् वचः क्षणं मया उच्यते तद अहिद्विषः समस्तकार्येषुं धुर्यतां गतेन भवता निशम्यताम्।

अनुवाद – नारदमुनि जी कहते हैं – हे उपेन्द्र (श्रीकृष्ण)! इन्द्र के द्वारा कथित सार्वजनिक हित की बात क्षण भर में जो मैं आपसे कह रहा हूँ, उस इन्द्र के सन्देश को उनके सभी कार्यों में अग्रणी आप उसे सुनें।

अभूदभूमिः प्रतिपक्षजन्मनां भियां तनूजस्तपनद्युतिर्दितेः।

यमिन्द्रशब्दार्थनिषूदनं हरेरिण्यपूर्व कशिपु प्रचक्षते।।42।।

अन्वयः – प्रतिपक्षजन्मनां भियां अभूमिः तपनद्युतिः दितेः तनूजः अभूत, हरेः इन्द्रशब्दार्थ– निषूदनं यं हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते।

अनुवाद – शत्रुओं से उत्पन्न भय से भयभीत न होने वाला सूर्य के समान तेज वाला दिति का पुत्र (दैत्य) हुआ। जिसे लोग 'परमैश्वर्यवान्' ऐसे इन्द्र शब्द के अर्थ को नष्ट करने वाला 'हिरण्यकशिपु' कहते हैं।

समत्सरेणासुर इत्युपेयुषा चिराय नाम्नां प्रथमाभिधेयताम्।

भयस्य पूर्वावतरस्तरस्विना मनस्सु येन द्युसदां न्यधीयत।।43।।

अन्वयः – समत्सरेण असुरः इति नाम्नः चिराय प्रथमाभिधेयतां उपेयुषा तरस्विना येन द्युसदां मनःसु भवस्य पूर्वावतरः न्यधीयत्।

अनुवाद – दूसरे के शुभ में द्वेष करने वाले तथा 'असुर' इस नाम के प्रथमाभिधान को प्राप्त अर्थात् सर्वप्रथम 'असुर' कहे जाने वाले जिस (हिरण्यकशिपु) के द्वारा ही देवताओं के मन में सबसे पहले भय का संचार किया गया।

दिशामधीशांश्चतुरो यतः सुरानपास्य तं रागह्यताः सिषेविरे।

अवापुराभ्य ततश्चला इति प्रवादमुच्चैरयशस्करं श्रियः।।44।।

अन्वयः – यतः श्रियः दिशां अधीशान् चतुरः सुरान् अपास्य तं रागहृताः सिषेविरे, ततः आरभ्य चलाः इति अयशस्करं प्रवादं उच्चैः अवापुः।

अनुवाद – लक्ष्मी जिस समय से दिशाओं के स्वामी चार देवताओं (इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर) को छोड़कर (शौर्य आदि) गुणों से आकृष्ट होकर उसकी (हिरण्यकशिपु की) सेवा करने लगी, तब से लक्ष्मी चंचल है, ऐसा अकीर्तिकर लोकापवाद (लक्ष्मी ने) प्राप्त किया।

पुराणिदुर्गाणि निशातमायुधं बलानि शूराणि घनाश्च कंचुकाः।

स्वरूपशोभैकफलानि नाकिनां गणैर्यमाशंक्य तदादि चक्रिरे।।45।।

अन्वयः – नाकिनां गणैः यं आशंक्य तदादि स्वरूप शोभैकफलानि पुराणि दुर्गाणि चक्रिरे, आयुधं निशातं चक्रे, बलानि शूराणि चक्रिरे, घनाः च कंचुकाः।

अनुवाद – (हे श्रीकृष्ण !) देवताओं के समूह ने जिस हिरण्यकशिपु से भयभीत होकर, प्रारम्भ से ही जिनके अस्तित्व की शोभा ही एकमात्र प्रयोजन था। ऐसे नगरों को दुर्ग बना लिया, शस्त्रों को तेज कर लिया, सेना को शूरवीर बना लिया तथा कवच को दृढ़ बना लिया।

स संचरिष्णुर्भुवनान्तरेषु यां यदृच्छयाऽशिश्रियदाश्रयः श्रियः।

अकारि तस्यै मुकुटोपलस्खलत् करैस्त्रिसन्ध्यं त्रिदशैदिशे नमः।।46।।

अन्वयः – भुवनान्तरेषु संचरिष्णुः श्रियः आश्रयः सः यदृच्छया यां (दिशम्) अशिश्रियत् तस्यै दिशे मुकुटोपलस्खलत्करैः त्रिदशैः त्रिसन्ध्यं नमः अकारि।

अनुवाद – सभी लोकों में संचरण करने वाला तथा लक्ष्मी का आश्रय वह हिरण्यकशिपु अपनी इच्छा से जिस दिशा में जाता था, (सिर पर पहने हुए) मुकुटों में जड़े गए रत्नों पर हाथ रखे हुए देवता लोग उस दिशा के लिए तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करते थे।

सटाच्छटाभिन्नघनेन विभ्रता नृसिंह ! सैंहीमतनुं तनुं त्वया।

स मुग्धकान्तास्तनसंगनसंगभंगुरैरुरोर्विदारं प्रतिचस्करे नखैः।।47।।

अन्वयः – हे नृसिंह ! अतनुं सैंहीं तनुं विभ्रता सटाच्छटाभिन्नघनेन त्वया सः मुग्धकान्ता– स्तनसंगभंगुरैः नखैः उरोविदारं प्रतिचस्करे।

अनुवाद – हे नृसिंहावतार धारण करने वाले श्रीकृष्ण ! विशाल सिंह शरीर को धारण करते हुए, गर्दन के बालों के समूह से बादलों को छिन्न–भिन्न करने वाले आपने उस हिरण्यकशिपु को नवयुवतियों के स्तन के सम्पर्क से भी टेड़े हो जाने वाले नखों द्वारा पेट फाड़कर मार डाला।

विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्डवास्त्रिदशैः समं पुनः।

स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः।।48।।

अन्वयः – अथ सः पुनः त्रिदशैः समं रणेन दर्पजन्मनः कण्ड्वाः विनोदं इच्छन् दिवः क्षतरक्षणं निकामभीषणं रावणो नाम रक्षः बभूव।

अनुवाद – इसके बाद वह (हिरण्यकशिपु) पुनः देवताओं के साथ युद्ध के द्वारा अपनी अहंकारजन्य खुजलाहट को दूर करने की इच्छा करता हुआ स्वर्ग की रक्षा को नष्ट करने वाला अत्यन्त भंयकर रावण नामक राक्षस हुआ।

प्रभुर्बुभूषुर्भूवनत्रयस्य यः शिरोऽतिागादृशमं चिकर्तिषुः।

अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः।।49।।

अन्वयः – भुवनत्रयस्य प्रभुः बभूषुः अतिरागात् दशमं शिरः चिकर्तिषुः इष्ट–साहसः यः इच्छासदृशं पिनाकिनः प्रसादं विघ्नमिव अतर्कयत्।

अनुवाद – तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा करने वाला, अधिक शक्ति से दसवें सिर को काटने का इच्छुक तथा महासाहसी जिस रावण ने अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त किए शंकर के वरदान को भी विघ्न के समान ही समझा।

समुत्क्षिपन् यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।

त्रसतुषाराद्रिसुताससम्भ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम्।।50।।

अन्वयः – यः पृथिवीभृतां वरं समुत्क्षिपन् शूलिनः वरप्रदानस्य ऋसतुषाराद्रिसुतासंभ्रम– स्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयं चकार।

अनुवाद – पर्वतश्रेष्ठ कैलाश को ऊपर उठाते हुए जिस रावण ने भयभीत पार्वती के द्वारा घबराहटपूर्वक (शंकर का) स्वयं ग्रहण किए जाने से आलिंगन–जनित सुख के द्वारा (अपने को) निष्क्रय कर लिया।

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हराऽमरांगनाः।

विगृह्य चक्रेनमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।।51।।

अन्वयः – बली यः नमुचिद्विषा विगृह्य, पुरीम् अवस्कन्द, नन्दन लुनीहिं, रत्नानि मुषाण, अमरांगनाः हर च इत्थम् अहर्दिवं दिवः अस्वास्थ्यं चक्रे।।

अनुवाद – शक्तिशाली जिस रावण ने इन्द्र के साथ युद्ध करके अमरावती को घेर लिया था, नन्दन नामक वन की शोभा नष्ट कर दी थी, बहुमूल्य रत्नों का हरण कर लिया था। देवताओं की सुन्दर नारियों का अपहरण कर लिया था। इस प्रकार वह प्रतिदिन स्वर्ग का अनिष्ट करता था।

सलीलयातानि न भर्तुरभ्रमोर्न चित्रमुच्चैःश्रवसः पदक्रमम्।

अनुद्रुतः सयति येन केवल बलस्य–शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम्।।52।।

अन्वयः – सयति येन अनुद्रुतः बलस्य शत्रुः अभ्रमोः भर्तुः सलीलयातानि न प्रशशस, उच्चै श्रवसः चित्रं पदक्रम न (प्रशशंस च), केवलं शीघ्रतां (प्रशशस)।

अनुवाद – जिस रावण के द्वारा युद्ध में अनुद्रुत (पीछाकर भगाए गए), बल के शत्रु इन्द्र ने ऐरावत के विलासपूर्वक गमन की एवं उच्चैःश्रवा नामक अपने घोड़े की नाना प्रकार की चालों की भी प्रशंसा नहीं की, अपितु उनकी शीघ्र गति की ही प्रशंसा की।

अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः सहस्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम्।

प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं निनाय विभ्यद्दिवसानि कौशिकः।।53।।

अन्वयः – अधीरलोचनः कौशिकः सहस्ररश्मेः इव यस्य दर्शनं सोढुम् अशक्नुवन् हेमाद्रिगुहागृहान्तर प्रविश्य विभ्यत् दिवसानि निनाय।

अनुवाद – सूर्य के समान (परम तेजस्वी) जिस रावण के दर्शन को सहने में असमर्थ नेत्रवाले इन्द्र ने सुमेरु पर्वत की गुफा रूपी घर के अन्दर घुसकर डरते हुए बहुत दिनों को बिताया।

बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनाद्विकीर्णलोलाग्निकणं सुरद्विषः।

जगत्प्रभोरप्रसहिष्णु वैष्णवं न चक्रमस्याक्रमर्ताधिकंधरम्।।54।।

अन्वयः – बृहच्छिलानिष्ठुरकण्ठघट्टनात् विकीर्णलोलाग्निकणं अप्रसहिष्णु वैष्णवं चक्रं जगत्प्रभोः सुरद्विषः अस्य अधिकन्धरं न अक्रमत।

अनुवाद – विशाल शिला–सदृश कठोर गले पर रगड़ने से निकलती हुई चिंगारियों से युक्त असहनीय विष्णु का सुदर्शन चक्र भी संसार के अधिपति, देवताओं के शत्रु इस (रावण) की गर्दन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका।

विभिन्नशंखः कलुषीभवन्मुहुर्मदेन दन्तीव मनुष्यधर्मणः।

निरस्तगाम्भीर्यमपास्तपुष्पकं प्रकम्पयामास न मानसं न सः।।55।।

अन्वयः – मदेन–दन्ती इव विभिन्नशंखः सः कलुषीभवत् निरस्तगाम्भीर्यम् अपास्तपुष्पकं मनुष्यधमंणः मानसं मुहुः न प्रकम्पयामास (इति) न।।

अनुवाद – अहंकार के कारण हाथी के समान नष्ट कर दिया है शंख नामक निधि को जिसने, उस रावण ने व्याकुल होते हुए, गंभीरता को छोड़े हुए एवं पुष्पक विमान से रहित हुए कुबेर के मन को बार–बार, क्षुब्ध न किया हो – ऐसा नहीं है अर्थात् कुबेर को भी क्षुब्ध किया।

रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुंकारपरांमुखीकृताः।

प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवः जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे।।56।।

अन्वयः – रणेषु प्रचेतसा प्रहिताः सरोषहुंकरपरांमुखीकृताः (अतएव) सभयाः उरगराज – रज्जवः जवेन तस्य प्रहर्तुः एव कण्ठं प्रपेदिरे।

अनुवाद – युद्धों में वरुण द्वारा प्रयुक्त, (तदुपरान्त रावण की) क्रोध पूर्ण हुंकार ध्वनि से लौटाये गए, भयभीत नागपाशों ने शीघ्रता से, भेजने वाले (वरूण) के गले में ही आश्रय ग्रहण किया।

परतेभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः।

हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेन भृशानतं शिरः।।57।।

अन्वयः – अमुना धनुः विधातुम् उत्खातविषाणमण्डलः परतेभर्तुः महिषः भारे हृते अपि महतः त्रपाभरात् भृणानतं शिरः दुःखेन उवाह।

अनुवाद – रावण ने धनुष बनाने के लिए यमराज के वाहन भैंसे के सींगों को उखाड़ लिया, उस यमराज के भैंसे ने (सींगों के) भार के हट जाने पर भी मानों लज्जा के महान् भार से अत्यन्त झुके हुए अपने सिर को कष्टपूर्वक धारण किया।

स्पृशन्सशंक समये शुचावपि स्थितः कराग्रैरसमग्रपातिभिः।

अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैरलंचकारास्य वधु रहस्करः।।58।।

अन्वयः – अहस्करः शुचौ समये स्थितः अपि असमग्रपातिभिः कराग्रैः सशंक स्पृशन् अघर्मघर्मोदकबिन्दुमौक्तिकैः अस्य वधूः अलंचकार।

अनुवाद – सूर्यदेव, गर्मी की ऋतु होने पर भी पूरी तरह से तेज न पड़ने वाली अपनी किरणों के कोमल भाग से, भयभीत होता हुआ (रावण की रानियों को) स्पर्श करते हुए शीतल स्वेदकण रूपी मोतियों से रावण की प्रियाओं को सुशोभित करता था।

कलासमग्रेण गृहानमुंचता मनस्विनीरुत्कयितुं पटीयसा।

विलासिनस्तस्य वितन्वता रतिं न नर्मसाचिव्यमकारि नेन्दुना।।59।।

अन्वयः – कलासमग्रेण गृहान् अमुंचता मनस्विनीः उत्कयितुं पटीयसा रतिं वितन्वता इन्दुना विलासिनः तस्य नर्मसाचिव्य न अकारि (इति) न।

अनुवाद – सम्पूर्ण कलाओं से युक्त (रावण के) घर को नहीं छोड़ता हुआ, मानिनी स्त्रियों को उत्कण्ठित करने में अत्यन्त चतुर एवं रावण के प्रेम को बढ़ाते हुए चन्द्रमा ने विलासी उस रावण के नर्मसचिव (विदूषक) का कार्य नहीं किया, ऐसा नहीं अर्थात् अवश्य किया गया।

विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधित्सया नूनमनेन मानिना।

न जातु वैनायकमेकमुद्धृतं विषाणमद्यापि पुनः प्ररोहति।।60।।

अन्वयः – मानिना अनेन विदग्धलीलोचितदन्तपत्रिकाविधिधित्सया जातु उद्धृतं वैनायकं एकं विषाणं अद्यापि पुनः न प्ररोहति नूनम्।

अनुवाद – इस अहंकारी रावण के द्वारा चतुर लीला वाली स्त्रियों के लिए उचित कानों का आभूषण बनाने की इच्छा से ही किसी समय गणेश जी का एक दांत तोड़ दिया था। गणेशजी का वह दाँत आज तक भी फिर नहीं उगा है।

निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।

प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः।।61।।

अन्वयः – निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसा अपि ऊरुषु लोलचक्षुषः तस्य प्रियेन प्रकम्पनेन अनपराधबाधिताः सुरा अनुचकम्पिरे।

अनुवाद – अन्तःपुर की कामिनियों के परिधान को उड़ाने के कारण स्पष्ट रूप से अपराधी होते हुए भी (कामिनियों की आवरणहीन) जंघाओं पर तृष्णा युक्त दृष्टि डालने वाले उस रावण के प्रिय वायु ने निरपराध कैद किए गए देवों को अनुकम्पित कर दिया अर्थात् रावण से छुड़वा दिया।

तिरस्कृतस्तस्य जनाभिभाविना मुहुर्महिम्ना महसां महीयसाम्।

बभार वाष्पैर्द्विगुणीकृतम् तनुस्तनूनपाद्धूमवितानमाधिजैः।।62।।

अन्वयः – तस्य जनाभिभाविना महीयसां महसां महिम्ना मुहुः तिरस्कृतः तनुः तनूनपात् आधिजैः वाष्पैः द्विगुणीकृतम् धूमवितानं बभार।

अनुवाद – रावण के समस्त लोकों को अभिभूत करने वाले अत्यन्त महान् प्रताप की महिमा से बार–बार तिरस्कृत अतएव दुर्बल अग्नि ने मानसिक पीड़ाजन्य वाष्प से द्विगुणित धूम समूह को धारण किया।

परस्य मर्माविधमुज्झतां निजं द्विजिह्वतादोषमजिह्मगामिभिः।

तमिद्धमाराधयितुं सकर्णकैः कुलैन भेजे फणिनां भुजंगता।।63।।

अन्वयः – इद्ध तं आराधयितुं परस्य मर्माविधं निजं द्विजिह्वतादोषं उज्झतां फणिनां अजिह्मगामिभिः सकर्णकैः भुजंगता न भेजे।

अनुवाद – उग्र शासक रावण को प्रसन्न करने के लिए दूसरों के मर्म स्थल को बेधने वाले, अपने द्विजिह्वता दोष को त्यागने वाले तथा कुटिल न चलने वाले एवं कर्णयुक्त सर्पों के समूह ने भुजंगता को ग्रहण नहीं किया अर्थात् छोड़ दिया।

तदीयमातंगघटाविघट्टितैः कटस्थलप्रोषितदानवारिभिः।

गृहीतदिक्कैरपुनर्निवर्तिभिश्चिराय याथार्थ्यमलम्भि दिग्गजैः।।64।।

अन्वयः – तदीयमातंगघटाविघट्टितः कटस्थप्रोषितदानवारिभिः गृहीतदिक्कै अनुपर्निवर्तिभिः दिग्गजैः चिराय याथार्थ्य अलम्भि।

अनुवाद – रावण के गजसमूह से ताडित अतएव गण्डस्थल से मदजल दूर हो गया है एवं जिन्होंने भागकर अपनी दिशाओं को ग्रहण कर लिया है एवं जो पुनः नहीं लौटे, उन दिग्गजों के द्वारा चिरकाल तक यथार्थता ('दिशाओं के हाथी है' यह अर्थवत्ता) प्राप्त की गयी।

अभीक्ष्णमुष्णैरपि तस्य सोष्मणः सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैर्यथा।

सचन्दनाम्भः कणकेमलैस्तया वपुर्जलाद्रपिवनैर्न निर्ववौ।।65।।

अन्वयः – सोष्मणः तस्य वपुः अभीक्ष्णं उष्णैः अपि सुरेन्द्रबन्दीश्वसितानिलैः यथा निर्ववौ तथा सचन्दनाम्भः कणकोमलैः जलार्द्रापवनैः न (निर्ववौ)।

अनुवाद – कामज्वर से संतप्त उस रावण का शरीर अत्यन्त उष्ण होते हुए भी बन्दीकृत देवांगनाओं के श्वासवायु से जैसा सुखी हुआ, चन्दनयुक्त जलकण से मृदु जल से शीतल वायु के द्वारा वैसा सुखी नहीं हुआ।

तपेन वर्षाः शरदा हिमागमो वसन्तलक्ष्म्या शिशिरः समेत्य च।

प्रसूनक्लृप्तिं दधतः सदर्तवः पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः।।66।।

अन्वयः – सदा प्रसूनक्लृप्तिं दधतः ऋतवः वर्षाः तपेन, हिमागमः शरदा, शिशिरः वसन्तलक्ष्म्या च समेत्य अस्य पुरे वास्तव्यकुटुम्बितां ययुः।

अनुवाद – सदैव पुष्पों की समृद्धि को धारण करती हुई सभी ऋतुएँ वर्षा ग्रीष्म के साथ, हेमन्त शरद के साथ, शिशिर वसन्त ऋतु की शोभा के साथ मिलकर इस रावण की नगरी में बसने वाले कुटुम्बी बन गई।

अमानवं जातमजं कुले मनोः प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।

मुमोच जाननपि जानकीं न यः सदाभिमानैकधना हि मानिनः।।67।।

अन्वयः – अमानवं अजं मनोः कुले जातं प्रभाविनं (भवन्तम्) आत्मनः अन्तं भाविनं जानन् अपि यः जानकीं न मुमोच। हि मानिनः सदा अभिमानैकधनाः (भवन्ति)।

अनुवाद – मानव भिन्न तथा जन्म रहित होते हुए भी मनु के कुल में उत्पन्न एवं अत्यन्त प्रभावशाली आपको अपना अवश्य ही मारने वाला जानते हुए भी जिस रावण ने जानकी को मुक्त नहीं किया अर्थात् वापस नहीं किया क्योंकि स्वाभिमानी पुरुष सर्वदा एकमात्र स्वाभिमान रूप धन वाले होते हैं।

स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवान् अमुंवनान्ताद् वनितापहारिणम्।

पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति।।68।।

अन्वयः – भवान् दाशरथिः भवन् वनान्तात् वनितापहारिणा अमुं आबद्धचलज्जलाविलं पयोधिं विलंघ्य लंकां निकषा हनिष्यति अदः स्मरति।

अनुवाद – आपने ही दशरथ के पुत्र राम होकर दण्डकारण्य के मध्य से अपनी पत्नी सीता का अपहरण करने वाले उस रावण को चंचल जलवाले एवं क्षुब्ध समुद्र को पुल द्वारा लांघकर लंका के पास में मारा था। इस बात को आप स्मरण करते हैं क्या ?

अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।

तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते संप्रति सोऽप्यसः परैः।।69।।

अन्वयः – अथ सम्प्रति छलनापरः एषः शैलूष भूमिकां इव अपरां उपपतिं अवाप्य शिशुपालसंज्ञया तिरोहितात्मा सन् सोऽपि परैः असः प्रतीयते।

अनुवाद – इसके उपरान्त (रावण के शरीर को छोड़ने के बाद) दूसरों को छलने में तत्पर वह रूपान्तर को धारण करने वाले नट के समान दूसरे जन्म को प्राप्त करके शिशुपाल नाम से छिपे हुए स्वरूप वाला होकर वही (रावण) होता हुआ भी इस समय दूसरों से वह (रावण) नहीं है, ऐसा ज्ञात होता है।

स बाल आसीद्वपुषा चतुर्भुजो मुखेन पूर्णेन्दुनिभस्त्रिलोचनः।

युवा कराक्रान्तमहीभृदुच्चकैरसंशयं सम्प्रति तेजसा रविः।।70।।

अन्वयः – सः बालः सन् वपुषा चतुर्भुज आसीत् मुखेन पूर्णेन्दुनिभः त्रिलोचनः आसीत्, सम्प्रति युवा सः कराक्रान्तमहीभृत् उच्चकैः तेजसा असशय रवि (अस्ति)।

अनुवाद – वह शिशुपाल बाल्यावस्था में शरीर से चार भुजाओं वाला, मुख से पूर्ण चन्द्रमा के समान तथा तीन नेत्रों वाला था। इस समय युवा होने पर वह करग्रहण द्वारा राजाओं को वशीभूत करने वाला अत्यधिक तेज से निश्चय ही अपनी किरणों से पर्वतों को व्याप्त करने वाला तेज से युक्त सूर्य के तुल्य हो रहा है।

स्वयं विधाता सुरदैत्यरक्षसामनुग्रहावग्रहयोर्यदृच्छया।

दशाननादीनभिराद्धदेवतावितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ।।71।।

अन्वयः – यदृच्छया स्वयं सुरदैत्यरक्षसां अनुग्राहवग्रहयोः विधाता असौ अभिराद्धदेवता– वितीर्णवीर्यातिशयान् दशाननादीन् हसति।

अनुवाद – अपनी इच्छा से स्वयं ही देवताओं, दैत्यों और राक्षसों पर कृपा अथवा दण्ड का विधान करने वाला यह शिशुपाल शिव आदि देवों की आराधना से अधिक पराक्रमी बने हुए रावण आदि पर हँसता है।

बलावेलपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।

सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।72।।

अन्वयः – जिगीषुणा तेन बलावलेपात् अधुना अपि पूर्ववत् जगत् प्रबाध्यते सतीयोषित् इव सुर्निश्चला प्रकृतिः भवान्तरेषु अपि पुमास अभ्यात।।

अनुवाद – जीतने का इच्छुक वह शिशुपाल बल के दर्प से इस समय भी पहले के (रावणादि जन्मावस्था के) समान संसार को पीड़ित करता है क्योंकि पतिव्रता स्त्री के समान सुस्थिर प्रकृति भी दूसरे जन्मों में भी उसी पुरुष को पुनः प्राप्त कर लेती है।

तदेनं मुल्लंघितशासनं विदेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।

शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो विपादनीया हि सतामसाधवः।।73।।

अन्वयः – तत् विधेः उल्लंघितशासनं एन कीनाशनिकेतनातिथिं विधेहि। हि शुभेतराचार –विपक्त्रिमापदः असाधवः सतां विपादनीयाः।

अनुवाद – इसलिए ब्रह्मा के शासन का उल्लंघन करने वाले इस शिशुपाल को यमराज के घर का अतिथि बनाइए, क्योंकि अशुभ आचरण से परिपक्व आपत्ति वाले दुष्ट, सज्जनों के द्वारा मारने योग्य होते हैं।

ह्रदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम बधातु पुनः पुरन्दरस्य।

धनपुलकपुलोमजाकुचाग्रदुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्।।74।।

अन्वयः – अरिवधोदयात् उदूढद्रढिम पुरन्दरस्य ह्रदय पुनः घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुत– परिरम्भनिपीडनक्षमत्वं दधातु।

अनुवाद – शत्रु शिशुपाल के विनाश के कारण अधिक दृढ़ता को प्राप्त इन्द्र के ह्रदय को पुनः अधिक रोमांचयुक्त इन्द्राणी के स्तनाग्रों के शीघ्र आलिंगन करने से परिपीड़ित करने में समर्थ बनाइए।

ओमित्यक्तवतोऽथ शार्ंगिण इति व्याह्रत्य वाचं नभ–

स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति

व्योम्नीव भ्रकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्।।75।।

इति माघकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये श्रीकृष्ण–नारदसम्भाषणं नाम प्रथमः सर्गः।

अन्वयः – तस्मिन् सुरमुनौ इति वाचं व्याह्रन्य नभः उत्पतिते पुरः इन्दोः श्रियं बिभ्रति (सति) अथ ओम् इति उक्तवतः चैद्य प्रति क्रुद्धस्य शार्ंगिणः वदने व्योम्नि इव अनिश शत्रुणां विनाशपिशुनः केतुः भ्रकुटिच्छलेन आस्पदं चकार।

अनुवाद – उन नारदमुनि के इस प्रकार वचन कहकर आकाश में उड़ जाने पर तथा सामने चन्द्रमा की शोभा को धारण कर लेने पर, नारदमुनि के वचनों को सुनने के बाद, 'अच्छा ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहने वाले शिशुपाल के ऊपर क्रद्ध, आकाशतुल्य भगवान् श्रीकृष्ण के मुख पर सदा शत्रुओं के नाश का सूचक धूमकेतु नामक तारा भ्रकुटि के बहाने से स्थित हो गया।

इस प्रकार माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य में 'श्रीकृष्ण–नारदसम्भाषण' नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

3.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. 'शिशुपालवध' किसकी रचना है ?
2. 'शिशुपालवध' के प्रथम सर्ग में कितने श्लोक है ?
3. शिशुपालवध के प्रथम सर्ग का क्या नाम है ?
4. शिशुपालवध में कितने सर्ग हैं ?
5. शिशुपालवध का आधार ग्रन्थ कौन–सा है ?

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से माघ द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' के प्रथम सर्ग का वर्णन किया गया है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है। जिस समय शिशुपाल का भूलोक पर आतंक परिव्याप्त था तब देवाधिपति इन्द्र ने नारद मुनि को श्रीकृष्ण के पास भेजा कि वे शिशुपाल का वध करके पृथ्वीलोक का आतंक दूर करें। नारदमुनि आकाश मार्ग से द्वारकापुरी में स्थित श्रीकृष्ण के घर जाते हैं। द्वारकापुरी में अपने भवन में बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने आकाश–मार्ग से आते हुए नारद मुनि को देखा। वे मुंज की मेखला, यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्ष की माला को धारण किए हुए थे। नारदमुनि अपनी अंगुलियों से बीणा बजा रहे थे और इस बीणा की ध्वनि में स्वर, ग्राम एवं मूर्च्छना स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। नारदमुनि के आते ही भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका यथोचित अतिथि सत्कार कर उनकी प्रशंसा करते हुए उनके आगमन का प्रयोजन पूछा। नारदमुनि अपने आगमन का कारण बताने से पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि आप योगियों द्वारा ध्यातव्य हैं एवं पुरुषोत्तम हैं। आपकी महिमा अपार है क्योंकि समय–समय पर आपने अवतार लेकर प्राणियों का उद्धार किया है। फिर नारदमुनि ने अपने आने का कारण कहा – हे भगवन् ! आप पृथिवी का भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुए है अतः इस पृथिवी का भार उतारने के लिए देवाधिपति इन्द्र ने मुझे सन्देश देकर भेजा है। कृपा करके सुने, प्राचीन काल में दिति का पुत्र दैत्य हिरण्यकशिपु अत्यन्त शक्तिशाली था। जिसने अपने पराक्रम से इन्द्रादि देवों को भी वश में कर लिया था। देवों के भय को दूर करने के लिए हे श्रीकृष्ण ! आपने ही नृसिंहावतार लेकर उसका वध किया था। हिरण्यकशिपु ने ही रावण के रूप में जन्म लिया। उसने इन्द्र, वरुण, चन्द्र, वायु एवं षड् ऋतुओं को भी अपने वश में करके अपनी सेवा में नियुक्त किया। केवल यही नहीं उसने आपकी धर्मपत्नी सीता का भी अपहरण किया। परन्तु राम का अवतार धारण करके आपने ही उस रावण का वध किया था।

अब वही रावण शिशुपाल के रूप में उत्पन्न हुआ है। वह शिशुपाल अपने बल और पराक्रम के अहंकार में चूर होकर ब्रह्मा की भी आज्ञा की अवहेलना करता हुआ सम्पूर्ण जगत् को पीड़ित कर रहा है। अतः हे कृष्ण ! उस दुष्ट का वध करके इन्द्रादि देवों को दुःख से मुक्त करें नारदमुनि द्वारा कथित इन्द्र के सन्देश को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोध से भृकुटि चढ़ा ली एवं शिशुपाल को मारने की स्वीकृति प्राप्त कर नारदमुनि आकाश को लौट गए।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **ऊर्ध्वज्वलनं** – ऊपर की ओर प्रज्वलित होना
- **विभावितकृतिं** – स्पष्ट आकृति वाले
- **समूढकर्पूरपरागपाण्डुरम्** – एकत्रित किए गए कपूर के चूर्ण के समान धवल
- **अम्भोरुहकेसरद्युतीः** – कमल–केसर के सदृश कान्ति को धारण करने वाली

- **शितिवाससः** – बलराम के
- **कृतोपवीतम्** – निर्मित यज्ञोपवीत धारण किए हुए
- **चकासतम्** – सुशोभित होते हुए
- **पतत्पतंगप्रतिमः** – गिरते हुए सूर्य के समान
- **तुषारांजनपर्वतौ इव** – हिम और काजल के पर्वत के समान
- **विदिद्युते** – सुशोभित हुए

3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. माघ की रचना है
2. 75
3. श्रीकृष्ण–नारदसम्भाषण
4. 20
5. महाभारत

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. शिशुपालवध के प्रथम सर्ग का सार लिखिए।
2. कृष्ण का चरित्र–चित्रण कीजिए।
3. शिशुपाल के पूर्वजन्मों का वर्णन कीजिए।
4. शिशुपाल का चरित्र–चित्रण कीजिए।
5. महाकवि माघ की काव्यप्रतिभा का विवेचन कीजिए।

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार – श्री रामजीलाल शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2015 ई०
2. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार – श्री पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2015 ई०
3. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार – मिश्र देवनारायण
4. संस्कृत हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2005 ई०
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2003 ई०
6. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार – डॉ० देवनारायण मिश्र, साहित्य भण्डार, मेरठ, संस्करण 2003 ई०

इकाई – 4

बुद्धचरितम् – अश्वघोष (तृतीय सर्ग)

इकाई की रूपरेखा

4.1 परिचय

4.2 इकाई के उद्देश्य

4.3 बुद्धचरितम् (तृतीय सर्ग)

4.4 अपनी प्रगति जांचिए

4.5 सारांश

4.6 मुख्य शब्दावली

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.1 परिचय

4.1.1 अश्वघोष

अश्वघोष संस्कृत में लिखने वाले बौद्ध लेखकों में सर्वाधिक महत्त्वशाली लेखक है। वे साहित्यकार होने के साथ–साथ संगीतज्ञ, दार्शनिक, उपदेशक एवं उत्साही बौद्धभिक्षु के रूप में प्रसिद्ध हैं। संस्कृत के अन्य कवियों के समान अश्वघोष के समय और स्थान के विषय में अनिश्चितता नहीं है। कुषाण वंश के सम्राट कनिष्क की सभा में प्रसिद्ध बौद्ध लेखक नागार्जुन तथा वसुमित्र के अतिरिक्त अश्वघोष के नाम का भी उल्लेख मिलता है। कनिष्क को शक–संवत् का प्रवर्तक माना जाता है। अतः उसका समय ई० पश्चात् प्रथम शताब्दी में रखा गया है। तदनुसार अश्वघोष का समय भी प्रथम शताब्दी ई० में निश्चित होता है। अश्वघोष ने अपने महाकाव्यों की पुष्पिकाओं में अपने स्थान और परिवार का परिचय दिया है। जिसके अनुसार अश्वघोष मूलतः साकेत के निवासी थे। बौद्ध बनने के पश्चात् वे कनिष्क की राजसभा में पुष्पपुर (पेशावर) चले गए थे। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। अनेक दार्शनिक ग्रन्थों के अतिरिक्त बुद्ध के चरित्र को उस समय के विद्वानों में प्रिय बनाने के लिए उन्होंने दो महाकाव्यों और एक नाटक की रचना की।

रचनाएँ – अश्वघोष के दो महाकाव्यों के नाम – बुद्धचरित और सौन्दरनन्द हैं। शारिपुत्र कृष्ण प्रकरण नाटक का नाम है, जो अपूर्ण तथा खण्डित अवस्था में प्राप्त होता है।

4.1.2 बुद्धचरित

इस महाकाव्य में महात्मा बुद्ध के जीवन का वर्णन करते हुए कवि ने महात्मा बुद्ध के उपदेशों को काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। सातवीं शताब्दी में भारत में आए चीनी यात्री इत्सिंग के अनुसार बुद्धचरित में 28 सर्ग थे लेकिन आजकल उसके प्रथम अठारह सर्ग ही उपलब्ध होते हैं। इनमें से भी अन्तिम चार 15 से 18 सर्ग तक मौलिक नहीं

हैं। हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त प्रति में तो चौदहवाँ सर्ग भी खण्डित है। नौवीं शताब्दी में अमृतानन्द नाम के कवि ने बुद्धचरित के चीनी अनुवाद के आधार पर पुनः बुद्धचरित के इन चार सर्गों की संस्कृत में रचना की। यद्यपि बुद्धचरित के चीनी और तिब्बती भाषान्तर में आज भी 28 सर्ग उपलब्ध होते हैं। श्री रामचन्द्र दास शास्त्री ने 15वें से 28वें सर्गपर्यन्त इसका छन्दोबद्ध संस्कृतानुवाद किया है, जो 1983 में चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित भी है।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है – **प्रथम सर्ग** में महात्मा बुद्ध का जन्म, **द्वितीय सर्ग** में अन्तःपुर–विहार, **तृतीय सर्ग** में रोगी तथा वृद्ध आदि को देखकर संवेग की उत्पत्ति, **चतुर्थ सर्ग** में स्त्रियों के द्वारा सिद्धार्थ को मोहने की चेष्टा तथा सिद्धार्थ द्वारा उनकी उपेक्षा, **पंचम सर्ग** में सिद्धार्थ का घर से अभिनिष्क्रमण, **षष्ठ सर्ग** में सिद्धार्थ को छोड़कर सारथि छन्दक का नगर आना, **सप्तम सर्ग** में गौतम (सिद्धार्थ) का तपोवन–प्रवेश, **अष्टम सर्ग** में अन्तःपुर की नारियों का विलाप, **नवम सर्ग** में कुमार का अन्वेषण, **दशम सर्ग** में बिम्बसार का आगमन, **एकादश सर्ग** में काम की निन्दा, **द्वादश सर्ग** में सिद्धार्थ का अराड ऋषि के आश्रम में जाना तथा धर्मोपदेश ग्रहण करना, **त्रयोदश सर्ग** में मार (कामदेव) का बुद्ध की तपस्या में विघ्नोत्पादन, दोनों का युद्ध तथा मार (कामदेव) की पराजय, तथा **चतुर्दश सर्ग** में बुद्धत्वप्राप्ति का निरूपण किया गया है। शेष 15वें से 28वें सर्गपर्यन्त क्रमशः महात्मा बुद्ध का काशीगमन, शिष्यों को दीक्षादान, महाशिष्यों का संन्यास लेकर जाना, अनाथपिण्डद की दीक्षा, पिता–पुत्र का समागम, जेतवन की स्वीकृति, संन्यास का झरना, आम्रपाली के उपवन में आयु का निर्णय, लिच्छिवियों पर अनुकम्पा, निर्वाणमार्ग में महापरिनिर्वाण, निर्वाण की प्रशंसा तथा धातु–विभाजन को निरूपित किया गया है।

इस काव्य में कवि का वर्णन–चातुर्य अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। **पाँचवे सर्ग** में घर छोड़कर जाते समय सिद्धार्थ के आन्तरिक भावों का वर्णन एव **सातवें सर्ग** में तपोवन का वर्णन तथा तपस्वियों के साथ सिद्धार्थ का वार्तालाप यद्यपि दार्शनिक है किन्तु रोचक है। नगर भ्रमण के लिए जाते हुए राजकुमार को अपने घरों के झरोखों से देखती हुई नारियों के सौन्दर्य तथा हावभाव के चित्र अत्यन्त कलात्मक हैं। सुन्दर युवतियों का शारीरिक आकर्षण भी सिद्धार्थ की विरक्ति में किस प्रकार सहायक होता है, यह कवि के बुद्ध के चरित के प्रति अत्यन्त श्रद्धा को प्रकट करता है। अपने सारथि छन्दक के समक्ष भी सिद्धार्थ के वचन अनासक्त भाव को ही स्पष्ट करते हैं। इसी अनासक्त भावना से अभिभूत महात्मा बुद्ध ने काम पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार ये सभी प्रसंग बुद्धचरित महाकाव्य के नायक महात्मा बुद्ध के चरित के उदात्त रूप को उजागर करने वाले हैं। काव्य–सौष्ठव की दृष्टि से संस्कृत–वाङ्मय में इस ग्रन्थ की अपनी एक विशेष पहचान बनी हुई है। सरल शब्दों में गूढ़भावों की अभिव्यक्ति इस ग्रन्थ की प्रमुख विशेषता है।

4.1.3 सौन्दरनन्द

अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य सौन्दरनन्द है। इसमें अठारह सर्गों में महात्मा बुद्ध के सौतेले भाई नन्द के अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रति अत्याधिक अनुराग एवं अन्त में विरक्त होकर महात्मा बुद्ध के धर्म में दीक्षा लेने की कथा का वर्णन है।

सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है – **प्रथम सर्ग** में गौतम बुद्ध की जन्मभूमि कपिलवस्तु का वर्णन, **द्वितीय सर्ग** में राजा शुद्धोदन का वर्णन, गौतम एवं नन्द का जन्म, **तृतीय सर्ग** में गौतम की बुद्धत्व प्राप्ति, **चतुर्थ सर्ग** में नन्द का अपनी पत्नी सुन्दरी के साथ विहार, बुद्ध का भिक्षार्थ नन्द के घर पर आना, भिक्षा पाए बिना वापिस जाना, नन्द का लज्जित होना, बुद्ध के पास क्षमा–याचनार्थ जाने के लिए पत्नी से अनुमति लेना, **पंचम सर्ग** में बुद्ध द्वारा नन्द को दीक्षा देना, नन्द का काषाय–ग्रहण, **षष्ठ सर्ग** में सुन्दरी का करुण विलाप, **सप्तम सर्ग** में सुन्दरी के वियोग में नन्द का विलाप, **अष्टम सर्ग** में एक श्रमण का नन्द को उपदेश, स्त्री निन्दा, स्त्री प्रसंग से निवृत्ति का उपदेश, **नवम सर्ग** में अभिमान की निन्दा, संयम की शिक्षा, **दशम सर्ग** में स्वर्ग दर्शन, **एकादश सर्ग** में स्वर्ग की निन्दा, **द्वादश सर्ग** में बुद्ध द्वारा नन्द को विवेक का उपदेश, **त्रयोदश सर्ग** में शील एवं इन्द्रिय संयम का महत्त्व,

चतुर्दश सर्ग में इन्द्रियजय के लिए आवश्यक कर्त्तव्य, **पंचदश सर्ग** में मानसिक शुद्धि की विधि, **षोडश सर्ग** में चार आर्य सत्यों की व्याख्या, **सप्तदश सर्ग** में नन्द को अमृतत्व की प्राप्ति तथा **अष्टादश सर्ग** में परम–ज्ञान के उपदेश का निरूपण किया गया है।

4.1.4 अश्वघोष की भाषाशैली

महाकवि अश्वघोष सरल किन्तु प्रभावपूर्ण वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए बौद्ध धर्म के प्रयोगात्मक और व्यावहारिक सिद्धान्तों को काव्य के माध्यम से रोचक और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। अश्वघोष की इस शैली में अलंकार की अपेक्षा अर्थ पर अधिक ध्यान दिया गया है। स्वार्थपरक इच्छाओं का त्याग, सार्वभौम परोपकार की भावना तथा कल्याण–तत्परता से युक्त दार्शनिक तथ्यों का वर्णन, व्याख्यान व उपदेश ही महाकवि अश्वघोष का लक्ष्य है। वे अपनी शैली की स्पष्टता, सजीवता एवं सुन्दरता से उन लोगों के मन को आकृष्ट करना चाहते थे, जिनको शुष्क सत्य एवं नीरस–कथन प्रभावित नहीं कर सकते थे। इस उद्देश्य के कारण केवल सौन्दर्य अथवा प्रभावोत्पादकता के निमित्त जान–बूझकर यत्न करने के लिए कोई अवकाश नहीं था। यही कारण है कि अश्वघोष की रचनाओं में रोचकता की प्रचुरता है तथा कुछ सीमा तक कालिदास की तुलना में अश्वघोष की शैली सरल है। भोगों के प्रति आसक्ति की व्यर्थता एवं संसार की असारता दिखाकर कवि ने पाठकों को संन्यासधर्म के प्रति प्रवृत होने के लिए 'कान्तासम्मिततया' प्रोत्साहित करने का सफल प्रयास किया गया है। 'बुद्धचरित' में महात्मा बुद्ध के द्विव्य जीवन के साथ, उनके उपदेशों का जो समन्वय किया गया है, वह अत्यन्त सारगर्भित तथा हृदयग्राही है।

4.2 इकाई के उद्देश्य

- अश्वघोष के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की समीक्षा कर पाएंगे;
- रोगी तथा वृद्ध आदि को देखकर सिद्धार्थ की संवेग–उत्पति का विश्लेषण कर पाएंगे;
- सिद्धार्थ का चरित्र–चित्रण कर पाएंगे;
- अश्वघोष के काव्यवैशिष्टय को प्रतिपादित कर पाएंगे;
- बुद्धचरित के तृतीय–सर्ग की कथावस्तु का विश्लेषण कर पाएंगे।

4.3 बुद्धचरितम् (तृतीय सर्ग)

ततः कदाचिन्मृदुशाद्वलानि पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि।

शुश्राव पद्माकरमण्डितानि गीतैर्निबद्धानि स काननानि।।1।।

अनुवाद – तब एक बार उस सिद्धार्थ ने गीत निबद्ध वन के विषय में सुना, जो कोमल एवं हरे तृणों से युक्त थे तथा जिनके वृक्ष कोयलों की ध्वनि से निनादित (गुंजायमान) थे एवं जो कमल के पोखरों से सुशोभित थे।

श्रुत्वा ततः स्त्रीजनवल्लभानां मनोज्ञभावं पुरकाननानाम्।

बहिःप्रयाणाय चकार बुद्धिमन्तर्गृहे नाग इवावरुद्धः।।2।।

अनुवाद – तब स्त्रियों के प्रिय पुर–काननों की सुन्दरता सुनकर, घर के भीतर बन्धे हुए हाथी के समान सिद्धार्थ ने बाहर जाने का विचार किया।

ततो नृपस्तस्य निशम्य भावं पुत्राभिधानस्य मनोरथस्य।

स्नेहस्य लक्ष्म्या वयसश्च योग्यामाज्ञापयामास विहारयात्राम्।।3।।

अनुवाद – तब पुत्र नामक उस सिद्धार्थ के मनोरथ का विचार सुनकर, राजा ने प्रेम, लक्ष्मी तथा वयस के योग्य वन–विहार यात्रा की आज्ञा दे दी।

निवर्तयामास च राजमार्गे संपातमार्तस्य पृथग्जनस्य।

मा भूत्कुमारः सुकुमारचित्तः संविग्नचेता इति मन्यमानः।।4।।

अनुवाद – तथा राजमार्ग पर आर्त (रोगादि से पीड़ित) जनता का आवागमन रोक दिया, यह सोचते हुए कि कोमल चित्त–वाले राजकुमार के चित्त में कहीं संवेग (वैराग्य) न हो जाए।

प्रत्यंगहीनान्विकलेन्द्रियांश्च जीर्णातुरादीन् कृपणांश्च दिक्षु।

ततः समुत्सायं परेण साम्ना शोभां परां राजपथस्य चक्रुः।।5।।

अनुवाद – अंगहीनों, इन्द्रियहीनों, वृद्धों, रोगियों तथा गरीबजनों को सब ओर परम शान्ति से हटाकर, उन (राजकर्मचारियों) ने राजपथ की परम शोभा की।

ततः कृते श्रीमति राजमार्गे श्रभ्मान्विनीतानुचरः कुमारः।

प्रासादपृष्ठादवतीर्य काले कृताभ्यनुज्ञो नृपमभ्यगच्छत्।।6।।

अनुवाद – तब राजमार्ग शोभा युक्त किए जाने पर, राजकुमार राजा की आज्ञा पाकर, श्रीमान् कुमार विनीत सेवकों के साथ राजमहल पर से समय पर उतर एवं राजा के समीप गया।

अथो नरेन्द्रः सुतमागताश्रुः शिरस्युपाघ्राय चिरं निरीक्ष्य।

गच्छेति चाज्ञापयति स्म वाचा स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच।।7।।

अनुवाद – तब राजा ने जिसे आँसू आ गए थे, पुत्र के सिर को चूमकर उसे चिरकाल तक देखा एवं 'जाओ' ऐसा कहते हुए आज्ञा दे दी, परन्तु स्नेह वश उसको मन से नहीं छोड़ा।

ततः स जाम्बूनदभाण्डभृद्भिर्युक्तं चतुर्भिर्निभृतैस्तुरंगैः।

अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारं हिरण्मयं स्यन्दनमारुरोह।।8।।

अनुवाद – तब वह राजकुमार स्वर्ण के आभूषणों से अलंकृत तथा सुशिक्षित चार अश्वों से युक्त सुवर्ण–रथ पर सवार हुआ, जिसका सारथि बलवान्, कुशल तथा अनुरक्त था।

ततः प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं विषक्तमाल्यं प्रचलत्पताकम्।

मार्गं प्रपेदे सदृशानुयात्रश्चन्द्रः सनक्षत्र इवान्तरिक्षम्।।9।।

अनुवाद – तब आकाश में नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा के समाने वह राजकुमार योग्य अनुचरों के साथ उस मार्ग में आया जिस मार्ग पर उजले फूल बिखरे हुए थे, मालाएँ लटक रही थी तथा पताकाएँ फहरा रही थीं।

कौतूहलात्स्फीततरैश्च नेत्रैर्नीलोत्पलार्धैरिव कीर्यमाणम्।

शनैः शनैः राजपथं जगाहे पौरैः समन्तादभिवीक्ष्यमाणः।।10।।

अनुवाद – कौतूहल से अत्यन्त विकसित नेत्र, जो अर्धनील कमल के समान थीं, जिस राजपथ पर बिखर रही थी, उस पर चारों ओर से पुरवासियों के द्वारा देखे जाते हुए उस राजकुमार ने शनैः शनैः प्रवेश किया।

तं तुष्टुवुः सौम्यगुणेन केचिद्ववन्दिरे दीप्ततया तथान्ये।

सौमुख्यतस्तु श्रियमस्य केचिद्वैपुल्यमाशंसिषुरायुषश्च।।11।।

अनुवाद – कतिपयों ने उसके सौम्य गुण के लिए उसकी स्तुति की कुछ ने तेजस्वी के कारण वन्दना की एवं कुछ ने सौन्दर्य गुण के कारण विपुल सम्पत्ति तथा दीर्घायु की कामना की।

निःसृत्य कुब्जाश्च महाकुलेभ्यो व्यूहाश्च कैरातकवामनानाम्।

नार्यः कृशेभ्यश्च निवेशनेभ्यो देवानुयानध्वजवत्प्रणेमुः।।12।।

अनुवाद – बड़े–बड़े कुलों से कूबड़े एवं गरीब घरों से किरात, वामनों के समूह ने और स्त्रियों ने निकलकर, इन्द्र देव की यात्रा के ध्वज की तरह उनको प्रणाम किया।

ततः कुमारः खलु गच्छतीति श्रुत्वा स्त्रियः प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम्।

दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मुर्जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञाः।।13।।

अनुवाद – तब ''राजकुमार जा रहा है'' यह समाचार सेवकों से सुनकर, स्त्रियाँ मान्य जन से आज्ञा पाकर, कुमार को देखने की इच्छा से अटारियों पर चढ़ गई।

ताः स्रस्तकांचीगुणविघ्नताश्च सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च।

वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च कौतूहलेनानिभृताः परीयुः।।14।।

अनुवाद – कुछ को शीघ्रता के कारण गिरती करधनी से उन्हें बाधा हुई, कुछ के सोकर उठने से उनकी आँखे व्याकुल थी, कुछ ने समाचार सुनकर शीघ्र गहने पहने तथा कौतूहल के कारण वे सब परदा–रहित एकत्र हो गई।

प्रासादसोपानतलप्रणादैः कांचीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च।

वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसंघानन्योन्यवेगांश्च समाक्षिपन्त्यः।।15।।

अनुवाद – महल के सोपान पर पद–तलों के निनाद से करधनियों के स्वर तथा नूपुरों की झंकार से घर के पालतू पक्षि–समूह को डराती हुई और एक–दसूरे के वेग को तिरस्कृत करती हुई वहां गई।

कासांचिदासां तु वरांगनानां जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम्।

गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशालाः श्रोणीरथाः पीतपयोधराश्च।।16।।

अनुवाद – उत्सुक होकर शीघ्रता करने पर भी उन कुलश्रेष्ठ स्त्रियों के अपने ही विशाल नितम्ब एवं पृथु पयोधरों ने गुरुता के कारण उनकी गति का अवरोध किया।

शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम्।

ह्रिया प्रगल्भा विनिगूहमाना रहःप्रयुक्तानि विभूषणानि।।17।।

अनुवाद – शीघ्र जाने में समर्थ होने पर भी, एक अन्य स्त्री ने अपनी चाल को रोक लिया तथा वह तेजी से नहीं गई, वह लज्जावती एकान्त में पहने हुए भूषणों को लाज से छिपाने लगी।

परस्परोत्पीडनपिण्डितानां संमर्दसंक्षोभितकुण्डलानाम्।

तासां तदा सस्वनभूषणानां वातायनेष्वप्रशमो बभूव।।18।।

अनुवाद – परस्पर उत्पीड़ित होती हुई वे स्त्रियाँ एकत्रित हुई, एक दूसरे की रगड़ से उनके कुण्डल चंचल हुए,

उनके भूषणों की ध्वनि गूंज रही थी तथा उन स्त्रियों ने उस समय वातायनों में अशान्ति फैला दी।

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परायासितकुण्डलानि।

स्त्रीणां विरेजुर्मुखपंकजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पंकजानि।।19।।

अनुवाद – परस्पर संघर्ष के कारण जिनके कुण्डल हिल रहे थे, ऐसी स्त्रियों के मुखकमल खिड़कियों से बाहर निकले हुए थे। वे ऐसे सुशोभित हुए मानों महलों में कमल खिले हों।

ततो विमानैर्युवतीकरालैः कौतूहलोद्घाटितवातयानैः।

श्रीमत्समन्तान्नगरं बभासे वियद्विमानैरिव साप्सरोभिः।।20।।

अनुवाद – उस समय कौतूहल से जिनके झरोखे खोल दिए गए थे तथा जिनसे स्त्रियाँ झाँक रही थी, उन महलों से सुशोभित नगर चारों ओर से इस प्रकार भासित हुआ मानो अप्सराओं के विमानों से युक्त स्वर्ग हो।

वातायनानामविशालभावादन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम्।

मुखानि रेजुः प्रमदोत्तमानां बद्धाः कलापा इव पंकजानाम्।।21।।

अनुवाद – वातायनों के विशाल न होने के कारण उत्तम स्त्रियाँ एक दूसरे के गालों पर अपने कुण्डल रखे हुए थीं। उनके मुख ऐसे सुशोभित हुए जैसे कमलों के बंध हुए गुच्छे हो।

तं ताः कुमारं पथि वीक्षमाणाः स्त्रीयो बभुर्गामिव गन्तुकामाः।

ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामाः।।22।।

अनुवाद – उस राजकुमार को मार्ग में जाते हुए देखकर स्त्रियों ने मानों महलों से पृथ्वी पर जाने की कामना की एवं उन्हें देखते हुए ऊर्ध्व–मुख पुरुष ऐसे प्रतीत हुए मानों आकाश में जाने की इच्छा कर रहे हो।

दृष्ट्वा च तं राजसुतं स्त्रियस्ता जाज्वल्यमानं वपुषा श्रिया च।

धन्यास्य भार्येति शनैरवोचंशुद्धैर्मनोभिः खलु नान्यभावात्।।23।।

अनुवाद – सौन्दर्य और विभूति से चमकते हुए राजा के उस पुत्र को देखकर उन स्त्रियों ने शुद्ध मन से, निश्चय ही अन्य भाव से नहीं, 'इसकी भार्या धन्य है' ऐसा धीरे से कहा।

अयं किल व्यायतपीनबाहू रूपेण साक्षादिव पुष्पकेतुः।

त्यक्त्वा श्रियं धर्ममुपैष्यतीति तस्मिन् हि ता गौरवमेव चक्रुः।।24।

अनुवाद – सौन्दर्य से साक्षात् कामदेव के समान विशाल एवं लम्बी एंव मोटी बाहुवाला यह राजकुमार लक्ष्मी को छोड़कर धर्म के समीप जाएगा, इस प्रकार उन्होंने उसका गौरव ही किया।

कीर्णं तथा राजपथं कुमारः पौरैर्विनीतैः शुचिधीरवेषैः।

तत्पूर्वमालोक्य जहर्ष किंचिन्मेने पुनर्भावमिवात्मनश्च।।25।।

अनुवाद – शुचि एवं धीर वेषवाले विनीत पुरवासियों से व्याप्त राजपथ को सर्वप्रथम देखकर कुछ प्रसन्न हुआ तथा उसने अपना पुनर्जन्म सा माना।

पुरं तु तत्स्वर्गमिव प्रहृष्टं शुद्धाधिवासाः समवेक्ष्य देवाः।

जीर्णं नरं निर्ममिरे प्रयातुं संचोदनाथं क्षितिपात्मजस्य।।26।।

अनुवाद – शुद्धाधिवास देवों ने उस नगर को स्वर्गतुल्य प्रसन्न देखकर, उस राजा के पुत्र को वन में जाने को प्रेरित करने के लिए एक वृद्ध पुरुष का निर्माण किया।

ततः कुमारो जरयाभिभूतं दृष्ट्वा नरेभ्यः पृथगाकृतिं तम्।

उवाच संग्राहकमागतास्थस्तत्रैव निष्कम्पनिविष्टदृष्टिः।।27।।

अनुवाद – तब राजकुमार ने जरा (वृद्धावस्था) से अभिभूत उस पुरुष को, जिसकी आकृति अन्य पुरुषों से पृथक् थी, ध्यानस्थ निश्चल दृष्टि से देखकर उसी में स्तब्ध होते हुए, सारथि से कहा।

क एष भोः सूत नरोऽभ्युपेतः केशैः सितैर्यष्टिविषक्तहस्तः।

भ्रूसंवृताक्षः शिथिलानतांग किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा।।28।।

अनुवाद – हे सारथि ! यह कौन मनुष्य आया है ? इसके केश श्वेत हैं, हाथों में लाठी पकड़े हुए है, भौंहों से नेत्र ढँके हैं, शिथिलता के कारण शरीर झुका हैं। क्या यह विकार है ? अथवा स्वभाव या अनायास ऐसा हो गया है।

इत्येवमुक्तः स रथप्रणेता निवेदयामास नृपात्मजाय।

संरक्ष्यमाप्यर्थमदोषदर्शी तैरेव देवैः कृतबुद्धिमोहः।।29।।

अनुवाद – ऐसा पूछे जाने पर उस रथवाहक ने राजा के पुत्र के लिए गुप्त बात भी बता दी। इसमें अपना दोष नहीं देखा क्योंकि उन्हीं देवों ने उसकी बुद्धि में भी मोह पैदा कर दिया था।

रूपस्य हन्त्री व्यसनं बलस्य शोकस्य योनिर्निधनं रतीनाम्।

नाशः स्मृतीनां रिषुरिन्द्रियाणामेषा जरा नाम ययैष भग्नः।।30।।

अनुवाद – रूप की हत्या करने वाली, बल के लिए विपत्ति स्वरूप, शोक की उत्पत्तिभूमि, आनन्द की मृत्यु, स्मृति का नाश करने वाली एवं इन्द्रियों का शत्रु यह वृद्धावस्था है, जिसने इसे तोड़ डाला है।

पीतं ह्यनेनापि पयः शिशुत्वे कालेन भूयः परिसृप्तमुर्व्याम्।

क्रमेण भूत्वा च युवा वपुष्मान् क्रमेण तेनैव जरामुपेतः।।31।।

अनुवाद – इसने भी बाल्यावस्था में दूध पिया, फिर कालक्रम से पृथिवी पर पेट के बल सरक कर गमन किया। क्रम से सुन्दर युवक होकर तथा उसी क्रम से वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ है।

इत्येवमुक्ते चलितः स किंचिद्राजात्मजः सूतमिदं बभाषे।

किमेष दोषो भविता ममापीत्यस्मै ततः सारथिरभ्युवाच।।32।।

अनुवाद – ऐसा कहे जाने पर कुछ विचलित होकर उस राजा के पुत्र ने सारथि से पूछा कि क्या यह दोष मुझे भी होगा ? तब सारथि ने उसको कहा।

आयुष्मतोऽप्येष वयःप्रकर्षो निःसंशयं कालवशेन भावी।

एवं जरां रूपविनाशयित्रीं जानाति चैवेच्छति चैव लोकः।।33।।

अनुवाद – आप आयुष्मान की भी यह वृद्धावस्था कालवशात् निश्चित रूप से होगी। इस रूपविनाशिनी जरा अवस्था को लोग जानते भी हैं एवं इसे चाहते भी हैं।

ततः सः पूर्वाशयशुद्धबुद्धिर्विस्तीर्णकल्पाचितपुण्यकर्मा।

श्रत्वा जरां संविविजे महात्मा महाशनेर्घोषमिवान्तिके गौः।।34।।

अनुवाद – तब अनेक कल्पों से जिसका पुण्य–कर्म संचित हुआ है एवं पूर्व की वासना से शुद्ध बुद्धिवाला वह महात्मा, वृद्धावस्था को सुनकर वैसे ही उद्विग्न हुआ जैसे समीप में महावज्र की ध्वनि सुनकर गाय उद्विग्न होती है।

निःश्वस्य दीर्घं स्वशिरः प्रकम्प्य तस्मिंश्च जीर्णे विनिवेश्य चक्षुः।

तं चैव दृष्ट्वा जनतां सहर्षां वाक्यं स संविग्न इदं जगाद।।35।।

अनुवाद – तब लम्बी श्वास लेकर, अपना शिर कंपाकर, उस वृद्ध की ओर दृष्टि लगाए हुए, उस जनता को प्रसन्न ही देखकर, उद्विग्न होते हुए, उस राजकुमार ने इस प्रकार कहा।

एवं जरा हन्ति च निर्विशेषं स्मतिं च रूपं च पराक्रमं च।

न चैव संवेगमुपैति लोकः प्रत्यक्षतोऽपीदृशमीक्षमाणः।।36।।

अनुवाद – इस प्रकार स्मृति, रूप तथा पराक्रम की बिना भेदभाव के यह वृद्धावस्था हत्या करती है और प्रत्यक्ष देखते हुए भी लोगों को संवेग नहीं होता है।

एवं गते सूत निवर्तयाश्चान् शीघ्रं गृहाण्येव भवान् प्रयातु।

उद्यानभूमो हि कुतो रतिर्मे जराभये चेतसि वर्तमाने।।37।।

अनुवाद – यदि ऐसा होता है तो हे सारथि ! घोड़ों को वापिस लौटाइए। आप शीघ्र घर को ही चलें, क्योंकि वृद्धावस्था का भय चित्त में रहते हुए मुझे उद्यान–भूमि में कहाँ से आनन्द होगा ?

अथाज्ञया भर्तृसुतस्य तस्य निवर्तयामास रथं नियन्ता।

ततः कुमारो भवनं तदेव चिन्तावशः शून्यमिव प्रपेदे।।38।।

अनुवाद – तदन्तर उस राजकुमार की आज्ञा से सारथि ने रथ को वापिस लौटाया। तब राजकुमार चिन्तावश शून्य की तरह उसी महल में पहुँचा।

यदा तु तत्रैव न शर्म लेभे जरा–जरेति प्रपरीक्षमाणः।

ततो नरेन्द्रानुमतः स भृयः क्रमेण तेनैव बहिजगाम।।39।।

अनुवाद – ''जरा–जरा (क्या है ?)'' इस प्रकार इसको परखते हुए जब कुमान ने वहाँ भी शांति नहीं पाई, तब राजा की आज्ञा से वह फिर उसी क्रम से बाहर गया।

अथापरं व्याधिपरीतदेहं त एव देवाः ससृजुर्मनुष्यम्।

दृष्ट्वा च तं सारथिमाबभाषे शौद्धोदनिस्तद्गतदृष्टिरेव।।40।।

अनुवाद – तब उन्हीं देवताओं ने रोग से ग्रस्त शरीर वाले दूसरे मनुष्य का सृजन किया। उसे देखकर शुद्धोदन के पुत्र ने उसी की ओर दृष्टि लगाए हुए सारथि से कहा।

स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्तांसबाहुः कृशपाण्डुगात्रः।

अम्बेति वाचं करुणं ब्रुवाणः परं समाश्रित्य नरः क एषः।।41।।

अनुवाद – यह कौन मनुष्य है ? जिसका उदर फूला हुआ है, श्वास से शरीर में कम्प हो रहा है, कंधे तथा भुजाएं

ढीली पड़ी है, देह दुबला और पीला है, दूसरे का सहारा लेकर 'माँ ! माँ !!!' यह वचन करूणा के साथ कह रहा है।

ततोऽब्रवीत्सारथिरस्य सौस्य धातुप्रकोपप्रभवः प्रवृद्धः।

रोगाभिधानः सुमहाननर्थः शक्तोऽपि येनैष कृतोऽस्वतन्त्रः।।42।।

अनुवाद – तब उस सारथि ने कहा कि हे सौम्य ! रसादि धातु के प्रकोप से उत्पन्न होकर बढ़ा हुआ यह रोग नामक महा–अनर्थ है, जिसने इस शक्तिशाली को भी पराधीन कर दिया है।

इत्यूचिवान् राजसुतः स भूयस्तं सानुकम्पो नरमीक्षमाणः।

अस्यैव जातः पृथगेष दोषः सामान्यतो रोगभयं प्रजानाम्।।43।।

अनुवाद – उस मनुष्य को अनुकम्पा के साथ देखते हुए उस नृपात्मज ने पुनः सारथि से पूछा कि यह दोष केवल इसी को हुआ है अथवा रोग का भय समान रूप से सभी प्रजाओं को है ?

ततो बभाषे स रथप्रणेता कुमार साधारण एष दोषः।

एवं हि रोगैः परिपीड्यमानो रुजातुरो हर्षमुपैति लोकः।।44।।

अनुवाद – तब उस सारथि ने कहा कि हे राजकुमार ! यह दोष साधारण (सबको होने वाला) है। इस प्रकार रोगों से परिपीड़ित होता हुआ, कष्ट से व्याकुल संसार हर्ष को प्राप्त होता है।

इति श्रुतार्थः स विषण्णचेताः प्रावेपताम्बूर्मिगतः शशीव।

इदं च वाक्यं करुणायमानः प्रोवाच किंचिन्मृदुना स्वरेण।।45।।

अनुवाद – इस प्रकार रोग की यह व्याख्या सुनकर, वह विह्वल–चित्त हो गया तथा चंचल जलतंरग में चन्द्रबिम्ब के समान काँपने लगा तथा करुण होते हुए उसने कुछ मृदु स्वर में यह वाक्य कहा।

इद च रोगव्यसनं प्रजानां पश्यंश्च विस्रम्भमुपैति लोकः।

विस्तीर्णमज्ञानमहो नराणां हसन्ति ये रोगभयैरमुक्ताः।।46।।

अनुवाद – इस तरह प्रजाओं की यह रोगरूपी विपत्ति देखते हुए भी यह संसार निर्द्वन्द्व रहता है। अहो ! मनुष्यों का यह कितना विशाल अज्ञान है जो रोग–भय से अमुक्त होकर भी हँस रहे हैं।

निवर्त्यतां सूत बहिःप्रयाणान्नरेन्द्रसद्मैव रथः प्रयातु।

श्रुत्वा च मे रोगभयं रतिभ्यः प्रत्याहतं संकुचतीव चेतः।।47।।

अनुवाद – हे सारथि ! बाहर जाने से रथ को वापिस लौटाइए। यह रथ राजमहल को ही चले। क्योंकि रोग भय सुनकर विषयों से प्रत्याहत मेरा चित्त संकुचित सा हो रहा है।

ततो निवृत्तः सः निवृत्तहर्षः प्रध्यानयुक्तः प्रविवेश वेश्म।

तं द्विस्तथा प्रेक्ष्य च संनिवृत्तं पर्येषणं भूमिपतिश्चकार।।48।।

अनुवाद – तब वहाँ से हर्ष रहित होकर वह लौटा। चिन्ता–मग्न होकर वह अपने महल में प्रविष्ट हुआ तथा उसको दो बार उस प्रकार लौटा देखकर, भूमिपति ने कारण जानना चाहा।

श्रुत्वा निमित्तं तु निवर्तस्य संत्यक्तमात्मानमनेन मेने।

मार्गस्य शौचाधिकृताय चैव चुक्रोश रुष्टोऽपि च नोग्रदण्डः।।49।।

अनुवाद – राजा ने वापिस लौटने का कारण सुनकर उसके द्वारा अपने को त्याग माना तथा मार्ग के शौचाधिकारी पर केवल क्रोध किया एवं रूष्ट होने पर भी उसको कठोर दण्ड नहीं दिया।

भूयश्च तस्मै विदधे सुताय विशेषयुक्तं विषयप्रचारम्।

चलेन्द्रियत्वादपि नाम सक्तो नास्मान्विजह्यादिति नाथमानः।।50।।

अनुवाद – पुनः उस पुत्र के लिए विशेष लगन से विषय सेवन का प्रबन्ध किया। इस आशा से कि इन्द्रियाँ स्वभावतः चंचल होती है, सम्भव है कि विषयों में आसक्त होकर यह हमें न छोड़े, ऐसी कामना करता रहा।

यदा च शब्दादिभिरिन्द्रयार्थैरन्तःपुरे नैव सुतोऽस्य रेमे।

ततो बहिर्व्यादिशति स्म यात्रां रसान्तरं स्यादिति मन्यमानः।।51।।

अनुवाद – जब अन्तःपुर में उसका पुत्र शब्दादि इन्द्रिय–विषयों से नहीं रमा तब उसने बाहर यात्रा करने का आदेश, यह समझते हुए दिया कि रसास्वाद से सम्भवतः रुचि– परिवर्तन हो जाए।

स्नेहाच्च भावं तनयस्य बुद्ध्वा स रागदोषानविचिन्त्य कांश्चित्।

योग्याः समाज्ञापयति स्म तत्र कलास्वभिज्ञा इति वारमुख्याः।।52।।

अनुवाद – तथा स्नेह के कारण पुत्र का भाव समझकर एवं राग के किन्हीं दोषों का बिना विचार किए ही राजा ने कला–कुशल, योग्य, प्रमुख वेश्याओं को वहां रहने की आज्ञा दी।

ततो विशेषेण नरेन्द्रमार्गे स्वलंकृते चैव परीक्षिते च।

व्यत्यस्य सूतं च रथं च राजा प्रस्थापयामास बहिः कुमारम्।।53।।

अनुवाद – तब विशेषता के साथ नरेन्द्र मार्ग (राजपथ) को खूब सज जाने एवं जाँच कर लेने पर, सारथि तथा रथ को बदलकर राजा ने कुमार को बाहर प्रस्थान कराया।

ततस्तथा गच्छति राजपुत्रे तैरेव देवैर्विहितो गतासुः।

तं चैव मार्गे मृतमुह्यमानं सूतः कुमारश्च ददर्श नान्यः।।54।।

अनुवाद – जब राजा का पुत्र पुनः उसी प्रकार जा रहा था, तब उन्हीं देवताओं ने एक निष्प्राण व्यक्ति को बनाया तथा उस मृतक को मार्ग में ले जाते हुए राजकुमार और सारथि ने देखा, दूसरे किसी ने नहीं।

अथाब्रवीद्राजसुतः स सूतं नश्रैचतुर्भिर्ह्रियते क एषः।

दीनैर्मनुष्यैरनुगम्यमानो विभूषितश्चाप्यवरुद्यते च।।55।।

अनुवाद – तब उस राजकुमार ने सारथि से पूछा कि यह कौन है ? इसे चार पुरुष लिए जा रहे है। दुःखी मनुष्य इसका अनुगमन कर रहे हैं एवं विशेष प्रकार से सजाए हुए है, फिर भी इसके लिए रोया जा रहा है।

ततः स शुद्धात्मभिरेव देवैः शुद्धाधिवासैरभिभूतचेताः।

अवाच्यमप्यर्थमिमं नियन्ता प्रव्याजहारार्थवदीश्वराय।।56।।

अनुवाद – तब शुद्ध स्वभाव वाले शुद्धाधिवास, देवताओं ने जिसका चित्त अभिभूत (बदल दिया) कर दिया था, उस

सारथि ने न कहने योग्य यह बात भी उस राजकुमार से कही।

बुद्धीन्द्रियप्राणगुणैर्वियुक्तः सुप्तो विसंज्ञस्तृणकाष्ठभूतः।

संवर्ध्य संरक्ष्य च यत्नवद्भि प्रियप्रियैस्त्यज्यत एष कोऽपि।।57।।

अनुवाद – यह कोई है, जो बुद्धि, इन्द्रियों, प्राणों एवं गुणों से वियुक्त, चेतना–रहित, तृण तथा काष्ठ के समान होकर यह सदैव के लिए सो (मर) गया है। अभी तक प्रियजनों ने इसका प्रयत्नपूर्वक संवर्धन तथा संरक्षण किया तथा अब इसे छोड़ रहे हैं।

इति प्रणेतुः स निशम्य वाक्यं संचुक्षुभे किंचिदुवाच चैनम्।

किं केवलोऽस्यैव जनस्य धर्मः सर्वप्रजानामयमीदृशोऽन्तः।।58।।

अनुवाद – रथवाहक का यह वाक्य सुनकर, वह राजकुमार कुछ व्यग्र हुआ तथा उसने कहा कि क्या यह धर्म केवल इसी मनुष्य का है अथवा सभी प्राणियों का अन्त ऐसे ही होता है।

ततः प्रणेता वदति स्म तस्मै सर्वप्रजानामिदमन्तकर्म।

हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाशः।।59।।

अनुवाद – तब रथवाहक ने उससे कहा कि सब प्राणियों का यही अन्तिम कर्म है। हीन, मध्यम या महात्मा कोई भी हो, संसार में सबका विनाश निश्चित है।

ततः स धीरोऽपि नरेन्द्रसूनुः श्रुत्वैव मृत्युं विषसाद सद्यः।

अंसेन संश्लिष्य च कूबराग्रं प्रीवाच निर्ह्रादवता स्वरेण।।60।।

अनुवाद – तब धीर होने पर भी उस नरेन्द्र–सूनु (राजकुमार) को, मृत्यु की बात सुनकर, तुरन्त विषाद हो गया। फिर कन्धे से कूबर के अग्रभाग (कोहुनी) का सहारा लेकर उसने गम्भीर स्वर से कहा।

इयं च निष्ठा नियता प्रजानां प्रमाद्यति त्यक्तभयश्च लोकः।

मनांसि शंके कठिनानि नॄणां स्वस्थस्तथा ह्यध्वनि वर्तमानः।।61।।

अनुवाद – प्राणियों का यह विनाश निश्चित है फिर भी संसार भय छोड़कर असावधानी कर रहा है। सोचता हूँ कि मनुष्यों के मन कठोर हैं क्योंकि इस प्रकार मृत्यु मार्ग में रहते हुए भी वे सुखी हैं।

तस्माद्रथः सूत निवर्त्यतां नो विहारभूमेर्नहि देशकालः।

जानन्विनाशं कथमार्तिकाले सचेतनः स्यादिह हि प्रमत्तः।।62।।

अनुवाद – इसलिए, हे सारथि ! हमारे रथ को वापिस लौटाइये। विहार–भूमि में जाने का यह अवसर नहीं है। अपना विनाश (मृत्यु) जानता हुआ भी कोई बुद्धिमान संकट–काल में कैसे असावधान रह सकता है।

इति ब्रुवाणेऽपि नराधिपात्मजे निवर्तयामास स नैव तं रथम्।

विशेषयुक्तं तु नरेन्द्रशासनात् स पद्मषण्डं वनमेव निर्ययौ।।63।।

अनुवाद – राजपुत्र के ऐसा कहते रहने पर भी उस सारथि ने रथ को वापिस नहीं लौटाया, अपितु राजा की आज्ञा से विशेष सुन्दरता से युक्त पद्मषण्ड नामक वन को ले गया।

ततः शिवं कुसुमितबालपादपं परिभ्रमत्प्रमुदितमत्तकोकिलम्।

विमानवत् स कमलचारुदोर्घिकं ददर्श तद्वनमिव नन्दनं वनम्।।64।।

अनुवाद – तब उस कुमार ने फूलते हुए छोटे–छोटे वृक्षों तथा घूमते हुए प्रमुदित मतवाले कोकिलों और कमलों से सुशोभित सुन्दर पोखरों वाले भव्य विमान के सदृश उस वन को देखा जो नन्दन वन के समान था।

वरांगनागणकलिलं नृपात्मजस्ततो बलाद्वनमतिनीयते स्म तत्।

वराप्सरोवृतमलकाधिपालयं नवव्रतो मुनिरिव विघ्नकातरः।।65।।

इति श्री अश्वघोषकृते पूर्वबुद्धचरितमहाकाव्ये संवेगोत्पत्तिर्नाम तृतीयः सर्गः।

अनुवाद – तब उत्तम स्त्रियों से परिपूर्ण उस वन में राजपुत्र को बलात् दूर–दूर ले जाया गया। जैसे श्रेष्ठ अप्सराओं से व्याप्त कुबेर–प्रासाद में विघ्न से डरने वाला कोई नवीन व्रती मुनि बलात् ले जाया जा रहा हो।

इस प्रकार अश्वघोषकृत बुद्धचरित महाकाव्य में 'संवेग–उत्पत्ति' नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

4.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. 'बुद्धचरित' के रचनाकार कौन है ?
2. 'बुद्धचरित' में कितने सर्ग हैं ?
3. 'बुद्धचरित' के तृतीय सर्ग का क्या नाम है ?
4. 'बुद्धचरित' के तृतीय सर्ग में कितने श्लोक हैं ?
5. अश्वघोष के दो महाकाव्यों के नाम बताओ।

4.5 सारांश

'संवेगोत्पत्तिः' नामक इस सर्ग में रोगी तथा वृद्ध आदि को देखकर मन में संवेग की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। किसी समय सिद्धार्थ ने गीत निबद्ध वन के विषय में सुना, जो कोमल एवं हरे तृणों से युक्त थे एवं जिनके वृक्ष कोयलों की ध्वनि से निनादित (गुंजायमान) थे और जो कमल के पोखरों से सुशोभित थे। राजकुमार के मनोगत भाव को जानकर राजा ने उसे वनविहार यात्रा की आज्ञा दे दी। राजकुमार के मन में रोगादि से पीड़ित व्यक्तियों के देखकर संवेग उत्पन्न न हो जाए, इस लिए ऐसे लोगों का मार्गों में आवागमन रोक दिया गया। राजकर्मचारियों ने राजपथ से अंगहीनों, इन्द्रियहीनों, वृद्धों, रोगियों तथा गरीबजनों को परम शान्ति से हटाकर राजपथ की परम शोभा की। राजपथ के सज जाने पर राजा से आज्ञा लेकर राजकुमार स्वर्ण के आभूषणों से अलंकृत चार अश्वों से संयुक्त तथा कुशल सारथि वाले सुवर्णमय रथ पर सवार हुआ। नगर के लोगों ने कुमार का अभिनन्दन किया तथा स्त्रियाँ उसको देखने के लिए अटारियों पर चढ़ गयी।

उस राजा के पुत्र को वन में जाने के लिए प्रेरित करने के लिए शुद्धाधिवास देवयोनि विशेषों ने एक वृद्ध पुरुष का निर्माण किया। तब राजकुमार ने जरा से अभिभूत उस पुरुष को देखकर सारथि से कहा – हे सारथि ! यह कौन मनुष्य आया है। इसके केश श्वेत हैं, हाथों में लाठी पकड़े हुए है, भौहों से नेत्र ढँके है, शिथिलता के कारण शरीर झुका हुआ है। क्या यह विकार है ? अथवा स्वभाव या अनायास ऐसा हो गया है। ऐसा पूछे जाने पर देवताओं के प्रभाव से बुद्धिमोह को प्राप्त उस रथवाहक ने बिना कुछ छिपाएं उस अवस्था के विषय में सब कुछ बता दिया। उसने कहा कि रूप की हत्या करने वाली, बल के लिए विपत्ति स्वरूप, शोक की उत्पत्ति भूमि, आनन्द की मृत्यु, स्मृति का नाश करने वाली एवं इन्द्रियों का शत्रु यह वृद्धावस्था है, जिसने इसे तोड़ डाला है। ऐसा कहे जाने

पर कुछ विचलित होकर उस कुमार ने सारथि से पूछा कि क्या यह दोष मुझे भी होगा ? तब उस सारथि ने कहा कि आप आयुष्मान की भी यह वृद्धावस्था कालवशात् निश्चित रूप से होगी। इस प्रकार सुनकर उस कुमार ने उद्विग्न होते हुए सारथि को रथ वापिस लौटाने को कहा। सारथी ने रथ लौटाया एवं महल में प्रवेश किया।

'जरा–जरा क्या है' इस प्रकार इसको परखते हुए जब कुमार ने वहां भी शान्ति नहीं पाई, तब राजा की आज्ञा से वह फिर उसी क्रम से बाहर गया। तब उन्हीं देवताओं ने रोग से ग्रस्त शरीर वाले दूसरे मनुष्य का सृजन किया उसे देखकर राजकुमार ने फिर सारथि से पूछा कि यह कौन मनुष्य है ? जिसका उदर फूला हुआ है, श्वास से शरीर में कम्प हो रहा है, कंधे तथा भुजाएँ ढीली पड़ी है, देह दुबला तथा पीला है, दूसरे का सहारा लेकर 'माँ ! माँ !' यह वचन करूणा के साथ कह रहा है। तब सारथि ने कहा कि हे सौम्य ! रसादि धातु के प्रकोप से उत्पन्न होकर बढ़ा हुआ यह रोग नामक महा–अनर्थ है, जिसने इस शक्तिशाली को भी पराधीन कर दिया है। तदनन्तर राजकुमार के द्वारा पूछे जाने पर कि क्या यह रोग केवल इसी को हुआ है ? अथवा रोग का भय समान रूप से सभी प्रजाओं को है ? सारथि ने कहा कि यह रोग साधारण अर्थात् सबको होने वाला है। इस प्रकार सुनकर उस कुमार ने उद्विग्न होते हुए सारथि को रथ वापिस लौटाने को कहा। राजकुमार के लौटने पर राजा का मन बहुत दुःखी हुआ कि कहीं यह पुत्र हमें छोड़ न दे।

राजा ने पुनः सारथि एवं रथ को बदलकर, विशेषता के साथ राजपथ को खूब सज जाने एवं जाँच कर लेने पर राजकुमार को बाहर प्रस्थान कराया। तब उन्हीं देवताओं ने एक निष्प्राण व्यक्ति को बनाया तथा उस मृतक को मार्ग में ले जाते हुए राजकुमार और सारथि ने देखा, दूसरे किसी और ने नहीं। तब उस कुमार ने सारथि से पूछा कि यह कौन है ? इसे चार पुरुष लिए जा रहे है। दुःखी मनुष्य इसका अनुगमन कर रहे हैं एवं विशेष प्रकार से सजाए हुए हैं फिर भी इसके लिए रोया जा रहा है। तब देवताओं ने जिसका चित्त अभिभूत कर दिया था, उस सारथि ने न कहने योग्य यह बात भी उस राजकुमार से कही कि यह कोई है, जो बुद्धि, इन्द्रियों, प्राणों एवं गुणों से वियुक्त, चेतना–रहित, तृण तथा काष्ठ के समान होकर यह सदैव के लिए सो (मर) गया है। अभी तक प्रियजनों ने उसका प्रयत्नपूर्वक संवर्धन तथा संरक्षण किया तथा अब इसे छोड़ रहे हैं। रथवाहक का यह वाक्य सुनकर, वह कुमार कुछ व्यग्र हुआ तथा उसने कहा कि क्या यह धर्म केवल इसी मनुष्य का है अथवा सभी प्राणियों का अन्त ऐसे ही होता है। तब रथवाहक ने उससे कहा कि सब प्राणियों का यही अन्तिम कर्म है। हीन, मध्यम या महात्मा कोई भी हो, संसार में सबका विनाश निश्चित है। इस प्रकार सारथि के कहने पर राजकुमार ने गम्भीर स्वर में कहा कि प्राणियों का यह विनाश निश्चित है फिर भी संसार भय छोड़कर असावधानी कर रहा है। मैं सोचता हूँ कि मनुष्यों के मन कठोर हैं क्योंकि इस प्रकार मृत्यु मार्ग में रहते हुए भी वे सुखी हैं। इसलिए, हे सारथि ! हमारे रथ को वापिस लौटाइए। विहार–भूमि में जाने का यह अवसर नहीं है। अपना विनाश (मृत्यु) जानता हुआ भी कोई बुद्धिमान संकट–काल में कैसे असावधान रह सकता है। राजपुत्र के ऐसा कहते रहने पर भी उस सारथि ने रथ को वापिस नहीं लौटाया, अपितु राजा की आज्ञा से विशेष सुन्दरता से युक्त पद्मषण्ड नामक वन को ले गया। तब उस कुमार ने फूलते हुए छोटे–छोटे वृक्षों तथा घूमते हुए प्रमुदित मतवाले कोकिलों और कमलों से सुशोभित सुन्दर पोखरों वाले भव्य विमान के सदृश उस वन को देखा जो नन्दन वन के समान था।

4.6 मुख्य शब्दावली

- **संवेगोत्पत्तिः** – रोगी तथा वृद्ध आदि को देखकर मन में संवेग की उत्पति
- **त्रिरत्न** – प्रज्ञा, शील और समाधि
- **सम्यक् दृष्टि** – सम्यक् ज्ञान के द्वारा भ्रान्तिमय विचारों का उन्मूलन कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होना

- **सम्यक् संकल्प** – शुभ कर्मों के करने का एवं अशुभ कर्मों के परित्याग का संकल्प
- **सम्यक् वाक्** – अनुचित वचनों का परिहार
- **सम्यक् कर्मान्त** – सबके प्रति दया, करुणा सहयोग जैसे कर्मों का उपयोग
- **सम्यक् आजीविका** – उचित साधनों से जीविकोपार्जन करना
- **सम्यक् व्यायाम** – मन और चित्त को नियन्त्रण में रखना
- **सम्यक् स्मृति** – पंचस्कन्धों, इन्द्रियों एवं चार आर्यसत्यों का स्मरण रखना
- **सम्यक् समाधि** – चित्त की शून्य और पूर्ण जाग्रत अवस्था

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. अश्वघोष
2. 28
3. संवेग–उत्पत्ति
4. 65
5. बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. बुद्धचरित के तृतीय सर्ग का सार लिखिए।
2. सिद्धार्थ का चरित्र–चित्रण कीजिए।
3. अश्वघोष का काव्यवैशिष्टय प्रतिपादित कीजिए।
4. रोगी तथा वृद्ध आदि को देखकर सिद्धार्थ की संवेग–उत्पति का विश्लेषण कीजिए।
5. अश्वघोष के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वर्णन कीजिए।

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. बुद्धचरितम् – अश्वघोष, व्याख्याकार – महन्त श्री रामचन्द्रदासशास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2014 ई०
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक शारदा मन्दिर, बनारस, पंचम संस्करण 1958 ई०
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2016 ई०
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2003 ई०
5. संस्कृत–हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2005 ई०